प्रेम-पथिक

(एक सचित्र मौलिक उपन्यास)

लेखक—

श्रीरामचन्द्र मिश्र

प्रकाशक—

नन्दकिशोर ऐंड ब्रादर्स,

पब्लिशर्स,

चौक, बनारस ।

सन् १९२६ मूल्य १)

मुद्रक—
श्रीमहताबराय, सरस्वती प्रेस, काशी ।

भूमिका

यह देखकर बड़ा आनन्द होता है कि हिन्दी का मौलिक साहित्य दिनोदिन उन्नति कर रहा है। अपने घर की चीज चाहे वह दूसरे दरजे की हो मँगनी की पहले दरजे की चीज से अच्छी होती है। एक हमारे गर्व की वस्तु है, दूसरी हमारी लज्जा की। इधर हिन्दी में कई अच्छी अच्छी किताबें निकली हैं। "प्रेम-पथिक" भी उन्हीं में एक है। यह ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें मुग़लों और मरहठों के संघर्ष-काल का दिग्दर्शन कराया गया है। जो भारतीय पुनरुत्थान का एक अद्भुत यद्यपि अल्पकालीन युग था। हमारी आयु के साथ हमारी साहित्यिक अवस्था में भी परिवर्तन होता रहता है। ऐतिहासिक उपन्यास कैशोर की प्रिय वस्तु है जब कल्पना आकाश में उड़ती रहती है, और संसार की साधारण वस्तुएँ उसे फीकी, नीरस, चमत्कार-हीन-सी जान पड़ती हैं। हमें आशा है, युवकवृन्द इस वीर-रस की कथा को चाव से पढ़ेंगे और उनके मन में भी "माधव" बनने की उमंग उठेगी।

प्रेमचंद

प्रेम-पथिक

प्रथम परिच्छेद

"नहीं, मैं तुमसे अब कभी नहीं बोलूँगी!"

पूना के एक प्रतिभाशाली प्रासाद के चारों ओर एक विस्तृत वाटिका फैली हुई है। इस समय कोई संध्या के सात बजे होंगे। ढोर अपने अपने चरागाहों से कभी के लौट-कर आचुके और अब अपने थानों पर बँधे आनन्द से जुगाली कर रहे हैं। कभी कभी उनमेंसे कोई ऊँघता ऊँघता अपना सिर हिला देता है तो उसके गले में बँधा हुआ घंटा, टन-टन बज उठता है और इस निस्तब्धता में उसकी वह ध्वनि चित्त के ऊपर एक विचित्र प्रभाव उत्पन्न कर देती है। पाठक! पूना एक तो पहाड़ी प्रदेश है ही और दूसरे वर्षा-काल की अमा-वस्या: इस समय यदि इतनी शीघ्र ही यहाँ निस्तब्धता फैली हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

हाँ, तो उस प्रासाद की उस वाटिका में एक घने कुंज के नीचे एक पुरुष और एक स्त्री खड़े हैं। पुरुष शरीर की गठन से वीर ज्ञात होता है, परन्तु इस समय उसका मुख-कमल, जो प्रसन्न होने पर विकसित सरोज को भी लज्जित कर सकता, अत्यन्त ही म्लान दिखाई देता है। उसकी आँखों से अनुरोध टपक रहा है और उसके हाव-भाव से प्रतीत होता है कि उसे किसी बात का बड़ा ही पश्चात्ताप हो रहा है।

रमणी की चढ़ी हुई भौंहें यह बताये देती हैं कि वह किसी बात से अत्यन्त क्रुद्ध हो गई है। उसका मुख तमतमा उठा है और जिस समय हम उसे देख रहे हैं, वह इस परिच्छेद के आरम्भ में लिखी हुई बात कह रही थी। सुनकर युवक मर्माहतसा होकर मौन रह गया और एक बड़ी ही करुणपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। युवती फिर बोली—नहीं, मैं तुमसे अब कभी नहीं बोलूँगी !

युवक और भी अप्रतिभ हो उठा और बड़े दुःख से बोला—शान्ता !!!

युवती—मैं तुमसे कह चुकी, माधव ! कि मैं अब तुमसे कभी नहीं बोलूँगी। यद्यपि हृदय तुम्हारे प्रेम के बिना व्याकुल हो उठेगा; परन्तु मैं उसको कठोर शासन करके शांत कर लूँगी। यदि तुम्हारे वियोग के कारण मेरी आँखों में आँसू आवेंगे तो मैं उन्हें पी जाऊँगी, परन्तु तुमसे न बोलूँगी ! ईश्वर तुम्हें शांति, बल और क्षमा प्रदान करे। मैं तुम्हारे लिए ही जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रत पालन कर लूँगी, परन्तु शान्ता जब शान्ता है, उसके मुख में तुम्हारे, कापुरुष माधव, के लिए एक शब्द भी न निकलेगा।

शान्ता यह कहते कहते बहुत उत्तेजित हो उठी। उसका कण्ठ अवरुद्ध होने लगा और वह दम लेने के लिये कुछ देर ठहर गई। माधव को मानो काठ मार गया हो, वह चुपचाप पुतले की भाँति निर्निमेष हो शान्ता की ओर देख रहा था। शान्ता फिर कहने लगी—मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि जिसे मैंने अपने हृदय में सबसे ऊँचे आसन पर स्थान दिया था, जिसके प्रेम के लिए मैं समस्त संसार को त्याग देने को तैयार थी, वह ऐसा कापुरुष निकलेगा ! तुमने किस लिए अपने को

मरने से बचा रक्खा। माधव, लड़ाई से भाग अपना पितृदत्त दुर्ग म्लेच्छों के हवाले कर तुमने इस कायरता से अपनी जान क्यों बचाई? तुम्हें तो पितृ-आज्ञा भंग करने के प्रथम ही युद्ध में प्राण दे देना उचित था। क्योंकर अभी तक इस नीच शरीर को बनाये रक्खे हो? माधव!

माधव बड़े ही दुखित स्वर से कहने लगे—तुम्हारे लिए ही मैं अपना दुर्ग चुपचाप पराधीन करा दिया। शान्ता, केवल तुम्हारे लिए ही मैं युद्ध में जाने का साहस भी न कर सका।

शान्ता—क्या सोचा था कि ऐसे कापुरुष को भारत के एक महावीर पुरुष की कन्या शान्ता, आत्मसमर्पण करेगी? नहीं, कभी नहीं। यह आशा स्वप्न में भी मत करना। हाँ, उसके विपरीत यदि मैं सुनती कि तुमने म्लेच्छों के साथ पितृ-आज्ञा पालन करने के लिए युद्ध करते करते प्राण दिये हैं तो मैं तुम्हारी लाश का अपना आत्मसमर्पण करती और उसी के साथ सती हो जाती। हां, कहीं मेरा ऐसा सौभाग्य होता! जाओ, मैं तुमसे अब कभी न बोलूँगी। पितृ-द्रोही, याद रक्खो, शान्ता जब तक शान्ता है, वह कभी भी कापुरुष माधव से न बोलेगी! यही मेरी प्रतिज्ञा है। जाओ, ईश्वर तुम्हें क्षमा करे।

इतना कहकर शान्ता तेजी के साथ प्रासाद की ओर चली गई और माधव के देखते देखते घने वृक्षों के पीछे जाकर आँखों से ओझल हो गई। माधव काठ के पुतले की भाँति एकटक उसी ओर देखते रह गये। उनके मुँह से एक बात भी न निकली।

आकाश में तारे निकल आये। वृक्ष वायु के वेग से खूब ज़ोर से हिलने लगे। उनमें से निकला हुआ पवन किसी के

बार बार निश्वास लेने की भाँति प्रतीन होने लगा। एकाएक पश्चिम की ओर से काले काले बादल उठे। देखते देखते पृथ्वी घोर अंधकार में लीन हो गई। तारों ने बादलों में छिपते छिपते माधव की ओर बड़ी ही करुण-दृष्टि से देखा, परन्तु भयानक मेघ ने उन्हें सहानुभूति दिखाने का अवसर भी न दिया और उद्दंडता से उन्हें रंगमंच के बाहर ढकेल दिया। लीजिये, देखते देखते बूँदें पडने लगीं।

माधव अभी तक उसी प्रकार किंकर्तव्य-विमूढ़ की भाँति खड़े प्रासाद की ओर देख रहे थे। क्रमशः आदि से लेकर अन्त तक सब घटनायें उनकी आँखों के सामने उपस्थित हो गईं। वह शान्ता के साथ बचपन में खेलना, खेलते खेलते आपस में रूठना, फिर छिप छिपकर एक दूसरे की ओर देखना और अपनेआप ही, परन्तु दूसरे की ओर लक्ष्य करके बातें कहना, फिर दोनों का खिलखिलाकर हँसना, मनोमालिन्य का मिट जाना और दोनों का फिर खेलने लगना! उसके पश्चात् माधव का पिता के साथ बिदरगढ़ चले जाना और धीरे धीरे यौवन में पदार्पण करना। शान्ता और उसके पिता का पूना चला जाना। माधव का अब तक शान्ता से मिलने जाना, दोनों के हृदय में प्रेमांकुर का जमना। पारस्परिक प्रेम! अचानक माधव के पिता का शरीर त्याग और बीजापुर के सुलतान आदिलशाह की बिदरगढ़ पर चढ़ाई। माधव के सेनापतियों का माधव को युद्ध की सलाह। माधव का सोच विचार, फिर चुपचाप बिदरगढ़ को आदिलशाह के हवाले कर देना और अपनी जान बचाकर भाग जाना। फिर आज शान्ता से मिलने पूना जाना। शान्ता का उसे फटकारकर चला जाना— एक एक करके सब बातें उसकी आँखों के सामने से निकल

गई। उसके बाद उसे अंधकार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई दिया। आँखें खुली होने पर भी उसे कुछ दिखाई न दिया। उसने आँखें फाड़-फाड़कर देखने की चेष्टा की, पर व्यर्थ। उसी समय वर्षा का जल उसके मुँह पर पड़ा, मानो उसकी विपत्ति देख बादलों के भी आँसू निकल आये और हवा ठंडी साँसें भरती हुई उसके सामने से निकल गई।

जल गिरने से उनका ध्यान टूटा और वह चारों ओर देखने लगे; परन्तु अंधकार के अतिरिक्त उन्हें कुछ भी न दिखाई दिया। संसार अंधकारमय प्रतीत होने लगा। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं; परन्तु उन्हें अपने हृदय में भी अंधकार के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई न दिया।

ईश्वर, क्या सारा संसार, वास्तव में अंधकारमय ही है। हृदय से किसी ने कहा—नहीं, ज्योतिर्मयी शान्ता के रहते संसार में अंधकार नहीं। इसी समय वृक्षों पर वर्षा का जल गिरने से चिड़ियाँ नींद में इधर-उधर उड़ने लगीं। एक कौआ काँय काँय कर उठा। मानो कह उठा कि शान्ता अब तुम्हारे लिए कहाँ है? हृदय से भी प्रतिध्वनि उठी—शान्ता अब तुम्हारे लिए कहाँ है? हाँ, वास्तव ही अब इस जीवन में शान्ता नहीं है। शान्ता बिना जीवन व्यर्थ है। हाँ, खूब याद आया, शान्ता ने कहा था कि यदि तुम मर जाते तो मैं तुम्हारे लिए सती हो जाती। बस, अब इस पापमय जीवन का अंत ही कर देना अच्छा है। शान्ता बिना जीवन व्यर्थ है। उसे भी यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि पापी ने प्राण त्याग दिया। हृदय में किसी ने कहा—"सावधान"। परन्तु माधव ने उसे सुना-अनसुना कर दिया और जीवन त्यागना ही निश्चय करके चला।

पास ही एक बहुत पुराना कुआँ था। बस, ईश्वर का नाम

लेकर उस पर चढ़ गया। हृदयने कहा—"ख़बरदार!" पीछे से किसी ने कहा—" भगवान्, एकलिंग की जय।" माधव ने सोचा, पापमय जीवन व्यर्थ है और वह धम से कुएँ में कूद पड़ा। कुएँ से ध्वनि निकली—"धड़ाम"—फिर सब शान्त हो गया।

द्वितीय परिच्छेद

औरंगज़ेब को दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार जमाये सात वर्ष व्यतीत हो गये। इन सात वर्षों तक वह घरेलू झगड़ों और उत्तरी भारत के युद्धों में फँसा रहा। अब जब सब झगड़ों से निपट गया, तो उसे फिर दक्षिण की सुधि आई।

अपनी कौमार अवस्था में ही उसने दक्षिण-देश का अधिक भाग जीत लिया था, परन्तु उसके दिल्ली चले जाने पर सब नवाब और राजा फिर स्वतन्त्र हो गये। इधर इन सात वर्षों में ही मरहठे शक्ति पकड़ गये। ये लोग सुरक्षित पहाड़ी दुर्गों में रहते थे और छोटी छोटी टुकड़ियाँ बनाकर बहुधा इधर-उधर घूमा करते थे। ये लोग जहाँ कहीं जो कुछ पाते, लूट लाते थे। शिवाजी ने इन्हें संगठित कर लिया और इनका सरदार बन बैठा। इस सेना को लेकर उसने पहले बीजापुर के अधीनस्थ टोरन-दुर्ग पर अधिकार किया और फिर धीरे धीरे सारा कोनकनदेश अपने अधीन कर लिया। अब तो इन लोगों की बन आई और इन्होंने बीजापुर-राज्य को धीरे धीरे और भी दबाना आरम्भ किया।

इन्हीं लोगों की एक टुकड़ी अपनी दिनचर्या के अनुसार आज भी शिकार की खोज में पूना की ओर आई थी। संध्या होने में अभी विलम्ब ही था कि यह पूना पहुँची और नगर के बाहर एक उद्यान में टिक गई। यह बाग़ नगर के बाहर होते हुए भी नगर का एक भाग था। कहने का तात्पर्य यह कि यह वीर तुकोजी भोंसला के गृह के पीछे का उद्यान था। ये लोग यहाँ एक सघन कुञ्ज में बैठकर शिकार की बाट जोहने लगे।

तारे निकल आये, परन्तु यह क्या! पश्चिम से बादल उठा और अंधकार के साथ ही साथ वर्षा आरम्भ हुई। इसी समय नगर के बाहर से चूँ चूँ का शब्द सुनाई दिया। सब चौकन्ने हो गये। सरदार ने आज्ञा दी कि आगे बढ़कर छापा मारो। सब लोग एक एक करके चल दिये। जब सरदार अकेला रह गया तो वह भी चलने को ही था कि कोई मनुष्य जल्दी से कुछ कहता हुआ उसके सामने से निकल गया। सरदार चुपचाप उसके पीछे हो लिया। वह आदमी चलता चलता उसी बाग़ के एक हिस्से में पहुँचा और एक झाड़ी के पीछे चला गया। सरदार ने आगे बढ़कर देखा, परन्तु अन्धकार के कारण कुछ भी दिखाई न दिया। सरदार चुपचाप खड़ा होकर आहट लेने लगा।

उधर उस मरहठों की टोली ने धीरे धीरे आगे बढ़कर उन चूँ चूँ करनेवाली गाड़ियों पर छापा मारा। रक्षक सैनिक थे, लड़ पड़े। मरहठे भी भगवान् एकलिंग की जय की ध्वनि करके उनसे भिड़ गये।

सरदार ने बाग़ में जय शब्द सुना तो उस निस्तब्ध रात्रि में शस्त्रों की झंकार भी उसे सुनाई दी। उसने सोचा कि

अपने सैनिकों की पीठ पर होना आवश्यक है। परन्तु उसी क्षण एक धड़ाम शब्द हुआ और वह दौड़कर शब्द होने के स्थान पर पहुँच गया। उसने देखा कि एक पुराना कुआँ सामने है और उसमें कोई कूद पड़ा है, या किसी ने किसी को धक्का दे दिया है। उसी क्षण उसे उस बड़बड़ाते हुए व्यक्ति का स्मरण हो आया। तुरन्त ही उसने अपनी पगड़ी खोली और उसे कुएँ में डाल उसके सहारे नीचे उतर गया। पहले तो उसे कुछ भी पता न चला; पर थोड़ी देर ढूँढ़ने पर उसका पैर किसी मनुष्य के सिर पर पड़ा। उसने उस देह को पकड़ लिया और बड़े कष्ट से उसे ऊपर ले आया। किसी प्रकार प्रयत्न कर उस मनुष्य के पेट का पानी निकाला और उसे उसी प्रकार लेटा छोड़ अपने साथियों से जा मिला।

लड़ाई खूब हो रही थी। रक्षकगण माल बचाने के लिए अपनी जान पर खेल रहे थे। दोनों शक्तियाँ समान थीं। सरदार ने पहुँचते ही ललकारा—डटे रहना! सरदार कान्हजी आ पहुँचा! मरहठों का उत्साह दूना हो गया, परन्तु उनके शत्रु घबड़ा गये। वे समझे कि कान्हजी के साथ अवश्य ही और सेना होगी इसी लिए वे भाग खड़े हुए। विजयी वीरों ने ख़ज़ाना लूट लिया और फिर सरदार के साथ उसी स्थान पर चले आये जहाँ सरदार उस डूबे हुए मनुष्य को छोड़ गया था। उन्होंने आकर देखा कि मनुष्य को कुछ कुछ चेत हो गया है और वह उठने की चेष्टा कर रहा है। यह उसके समीप पहुँच गये। सरदार ने उसके निकट जाकर उसे उठाया और साथ लेकर अपने दुर्ग की ओर चला।

दुर्ग में पहुँचकर माधव को भी सेना में सम्मिलित होना पड़ा, परन्तु माधव का मन सैनिक होने से भी प्रफुल्लित नहीं

हुआ। वह नैराश्य प्रेम-पथिक थे। इसी कारण उन्हें मृत्यु की चाह थी। वह सेना में होते हुए भी सैनिक न थे। उन्हें मृत्यु की चाह थी इसी लिए वह सेना में सबसे अधिक आलसी और कमज़ोर थे। वह दिन-रात भाँग पीते और अपने घर में सोया करते। कभी किसी मरहठा टुकड़ी के साथ जाते उन्हें नहीं देखा गया। आज्ञा-भंग करना उनके लिए एक सामान्य बात थी। वह अपने साथियों से बात बात पर लड़ बैठते। जब कोई उन्हें अशिष्ट होने का दोष देता तो मरने-मारने पर उतारू हो जाते। इसी लिए धीरे धीरे एक एक करके सब दुर्गवासी उनसे विरोध करने लगे। परन्तु माधव किसी के विरोध की भी परवा नहीं करते थे। उनके जीवन का स्रोत दूसरे ही ओर बह रहा था। उन्हें सेना में गौरव प्राप्त करने की कोई भी चाल ज्ञात न थी। वे इस संसार को हीन दृष्टि से देखते थे। अपनी मान-रक्षा का उन्हें तनिक भी ध्यान न था। उनका सिद्धान्त मृत्यु, उनकी आकांक्षा मृत्यु; यदि ईश्वर से उनकी कोई प्रार्थना थी तो मृत्यु ही थी। संसार उनके लिये अंधकारमय था। वह सोचा करते—हा, मैं व्यर्थ अब तक इस क्षुद्र जीवन को बनाये हुए हूँ। मैं कायर हूँ जो शान्ता के आदेश पालन करने में अब तक असमर्थ हूँ। ईश्वर न्यायी नहीं है। मुझे मृत्यु क्यों नहीं देता? न-जाने सरदार कान्हजी से मेरा किस जन्म का वैर था जो उन्होंने मुझे कुएँ से निकालकर मेरे कर्तव्यपालन में बाधा डाली। क्या यही ईश्वर का न्याय है? फिर सोचते—अन्याय भी नहीं। मैंने पितृ-द्रोह किया था। अपने अधीन व्यक्तियों को म्लेच्छों के हाथ सौंप दिया। उसने मुझे शान्ता से, वंचित किया। मैंने डूबकर अपने हृदय को शान्तिलाभ कराना

चाहा, परन्तु उसके यहाँ पापियों के लिए शान्ति नहीं है। उसने मुझे मरने से बचा लिया और पापों का फल भोगने के लिए ही इस संसार में छोड़ दिया। हा! इस जीवन से मृत्यु सहस्र गुनी श्रेष्ठ है। मैं हजारों बार आत्मघात करने का प्रयत्न कर चुका हूँ: परन्तु सब निष्फल! जैसे किसी ने हृदय में से कोई सार-तत्त्व खींच लिया हो। कटार हाथ में लेते ही हाथ काँपने लगते हैं, हृदय धड़कने लगता है। यह जानते हुए भी कि जीवन व्यर्थ है उसका नाश नहीं कर सकता। हा! मेरे हृदय में इतनी दुर्बलता और इतनी कायरता कहाँ से आ गई। अपनी आत्महिंसा को चरितार्थ करने के लिए मैं सेना के कड़े नियम भी पालन नहीं करता सबसे ... बढ़ा लिया है। परन्तु न तो सेनाध्यक्ष लोग ही मेरा जीवन अन्त करने की आज्ञा देते हैं और न कोई सैनिक ही मेरे मार्ग में पड़ना चाहता है। जैसे मुझसे सब भयभीत हों।

रात्रि का समय था, चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। अमावस की रात थी। आँखों का होना न होना बराबर था। तारागण भी बादलों में मुख छिपाये हुए थे। अन्धकार ने जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, पहाड़ और खड्ड सबको समान कर दिया था। केवल कभी कभी किसी चौकीदार का "जागते रहो" वाक्य ही संसार के जीवित होने का परिचय दे रहा था। सन्नाटा ऐसा छाया हुआ था कि ये सब शब्द भी उसी में निमग्न हो जाते थे। ऐसा ज्ञान पड़ता था कि पृथ्वी अभी शून्य के गर्भ में पड़ी हुई है।

माधव जीवन से विरक्त थे। आज ऐसी भयानक रात्रि में यह गढ़ के द्वार-रक्षक थे। अकेले बैठे हुए यह फिर अपने

उन्हीं विचारों में निमग्न हो गए। उन्हें फिर आत्महत्या की सूझी। हृदय में बार बार वह सोचने लगे। थोड़ी देर बाद फिर बोले—अब नहीं सहा जाता। न, मैं यहीं पर प्राण दे दूँगा। लेकिन आत्महत्या महान् पाप है। हे दयामय ईश्वर, तुमने मनुष्य को कोमल प्रकृति बनाया तो उसे दानव की शक्ति क्यों नहीं दी। उसमें इतनी कायरता क्यों भर दी। माधव ने दिल कड़ाकर कटार निकाल ली और उसे अपनी छाती पर रख दिया। फिर कहने लगा—अब जीने की आवश्यकता नहीं है। चित्त उद्विग्न हो गया। बार बार टहलने लगा। सहसा दुर्ग से लपककर बाहर निकला। फिर एकदम खड़ा होकर कहा—अब नहीं सहा जाता। तिल तिल करके यह भी तो मर ही रहा हूँ। परन्तु यह भीरुता है। इससे बढ़कर सैनिक के लिए और क्या पातक होगा। भगवान् एक लिंग! तुमने मुझे यह जीवन दिया है। यह मेरी सम्पत्ति है। मैं इसे रक्खूँ या मिटा दूँ, इसमें तुम्हें क्या! अवश्य करूँगा, मैं आत्महत्या अवश्य ही करूँगा। वह दौड़कर दुर्ग के भीतर आया परन्तु यह क्या!

वहाँ उन्हें एक छोटीसी सेना दिखाई दी। इन्हें एकदम होश आ गया। सिर चकरा गया परन्तु हृदय आनन्द से उछल पड़ा। मैं आत्महत्या के पाप से बच गया। अब अवश्य ही सैनिक नियम के अनुसार मृत्यु मिलेगी।

सरदार ने संकेत किया और सैनिकों ने इन्हें बाँध लिया। दुर्ग-द्वार बंद हो गया और वहाँ एक नया पहरा बैठा दिया गया।

तृतीय परिच्छेद

शान्ता माधव को झिड़ककर चली तो आई; परन्तु उसको शान्ति न मिली। उसके हृदय में मानो भयानक आँधी बहती थी। आँधी अपने साथ बादल उड़ा लाई। फिर क्या था, पानी भी बरसने लगा। उसकी आँखों से अश्रु-बिन्दु ढुलक-कर गुलाबी गालों पर ऐसे शोभायमान प्रतीत होने लगे जैसे गुलाब की कोमल पुष्प पंखड़ियों पर प्रातःकालीन ओस की बूँदें।

वह किसी प्रकार अपने हृदय के वेग को दबाते हुए जल्दी जल्दी प्रासाद की ओर चली। उस समय वर्षा खूब हो रही थी। घर पहुँचते पहुँचते उसके सब वस्त्र भीग गये। किसी प्रकार वह गुप्त द्वार से होती हुई घर के अंदर पहुँच गई। द्वार घर के आँगन में जाकर खुला था। ज्यों ही वह उस राह से बाहर निकली कि इसकी दृष्टि सामने खड़े एक दीर्घकाय पुरुष पर पड़ी जो बड़े ध्यान से खुले हुए गुप्त द्वार की ओर देख रहा था। उसके डील-डौल और शरीर की बनावट देखते ही शान्ता ने पहचान लिया कि उसके पिता तुकोजी हैं। वह सहम गई।

उस प्रासाद का वह गुप्त द्वार सदैव बंद रहा करता था। कारीगरों ने उसे संकट के समय भागने या गुप्त रीति से सेना के वास्ते खाद्य सामग्री लाने के लिए ही निर्माण किया था। इस समय जब तुकोजी टहलते टहलते प्रासाद के उस भाग में आ निकले तो वह द्वार खुला देखकर

उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। बात यह थी कि शान्ता बाहर जाते समय द्वार को बंद करना भूल गई थी और वह उसके लौट आने तक वैसे ही खुला पड़ा था। तुकोजी को किसी शत्रु के आने की आशंका हुई और वह सोचने लगे कि यह द्वार तो घर के अन्दर से ही खुलता है, फिर क्या मेरे घर के भीतर भी शत्रु के दूत किसी गुप्त रूप में छिपे हुए हैं?

वह यह सोच ही रहे थे कि उन्हें पैर की चाप सुनाई दी। वह एकदम चौकन्ने हो गये और बड़े ध्यान से उसी ओर देखने लगे। ज्यों ही शान्ता ने दृष्टि उठाकर देखा कि उसकी आँखें उनकी आँखों से जा मिलीं। वह वहीं सन्न रह गई।

यहाँ हम अपने पाठकों का तुकाजी का परिचय दे देना उचित समझते हैं। बीजापुर के नवाब के यहाँ मरहठे भी ऊँचे ऊँचे पदों पर थे। उनमें अधिक प्रतिभाशाली शिवाजी के पिता शाहजी भोंसला थे, शाहजी के एक बहन गानीबाई थीं, वह बीजापुर के एक मरहठा सरदार दाऊजी भोंसला को ब्याही थीं। उनके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम तुकोजी रक्खा गया। तुकोजी बाल्य-काल में बहुत ही बोदे थे। सर्वदा सुस्त रहा करते, किसी से अधिक बोलना भी पसन्द नहीं करते थे। इनके पिता ने इन्हें क्षत्रियोचित शिक्षा दी थी।

पहले तो इनके पिता इनकी ऐसी अवस्था देख कहा करते थे कि न-जाने यह लड़का कितना कायर होगा, परन्तु शीघ्र ही उन्हें अपना यह मत बदल देना पड़ा। थोड़े ही समय में इन्होंने अपनी वीरता का वह परिचय दिया कि बड़े बड़े योद्धा भी इनका नाम आदर से लेने लगे। इस वीरता के आने के साथ इनमें एक प्राकृतिक परिवर्तन और हुआ, इनका स्वभाव

अत्यन्त क्रोधी हो गया, बात बात में इन्हें क्रोध आ जाता था। एक बार यह बादशाह की सभा में गये। वहाँ पर यह कुछ ऊँघ से गये। एक सभासद ने हँसी से एक तिनका उनकी नाक में डाल दिया। यह तुरन्त जग पड़े, इन्हें क्रोध चढ़ आया और तलवार निकालकर उस सभासद का सिर काट लिया। फिर भी इन्हें शान्ति न मिली और बादशाह के और सभासदों को युद्ध के लिये ललकारने लगे। बादशाह ने इनकी वीरता से प्रसन्न होकर इन्हें उस सभासद के स्थान पर नियुक्त कर दिया। उस पद पर रहकर इन्होंने बहुतसी लड़ाइयाँ जीतीं। इनसे प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हें पंचहज़ारी का पद दिया और अपने दुर्ग का अध्यक्ष नियत किया। उस दिन से यह बीजापुर रहने लगे। फिर यह सेनानायक बना कर पूना भेज दिये गये और वहीं इन्होंने अपनी आयु का बड़ा भाग व्यतीत किया। अस्तु।

तुकोजी ने शान्ता को न पहचाना और कड़ककर पूछने लगे—कौन आता है? खड़े रहो।

शान्ता—मैं हूँ, पिताजी!

तुकोजी—कौन, शान्ता! बेटी, ऐसी रात के समय आँधी-पानी में कहाँ से आ रही हो, कुशल तो है न?

शान्ता—जी हाँ पिताजी, सब कुशल है। मैं संध्या-समय उद्यान में टहलने चली गई थी, वहाँ पानी बरसने लगा। मैं थोड़ी देर तक तो इसके रुकने की बाट देखती रही; पर जब नहीं थमा और इधर देर होने लगी, तो मैं बरसते में ही चली आई।

तुकोजी—अरे, मैंने तो देखा भी नहीं बेटी; तुम तो तमाम भीग रही हो। जाओ, शीघ्र वस्त्र बदल डालो और देखो,

अकेली इस प्रकार घूमने मत जाया करो। बेटी! चारों ओर शत्रु फिरते हैं, फिर यह बाग़ भी पूना-शहर के बाहर होने के कारण सुरक्षित नहीं है। क्या मालूम किस समय कौन मिल जाय।

यह कहकर दोनों मकान में चले गये। शान्ता कई दालान और कमरे पार करती हुई एक कमरे में पहुँची। यह कमरा बहुत बड़ा तो न था, परन्तु अत्यन्त ही सुन्दरता से सजाया हुआ था! कमरे में बीचोबीच एक मसनद बिछी हुई थी। उसके एक ओर गाव-तकिये लगे थे। मसनद के सामने दाहनी ओर एक छोटीसी चाँदी की चौकी पर एक गंगा-जमुनी पानदान रक्खा हुआ था। बाईं ओर एक सुन्दर बिल्लौरी शमादान में सुगंधित तैल जल रहा था और उस कमरे को अपनी मनोरम सुगंधि से सुवासित कर रहा था। पास ही एक वीणा रक्खी थी। कमरे में दीवारों पर देवताओं और वीरों के तैल-चित्र कमरे की शोभा को बढ़ा रहे थे। एक कोने में एक सुन्दर पलंग बिछा हुआ था और उसके सामने ही एक दीर्घाकार दर्पण शोभारूपी सोने में सुगंध का काम कर रहा था।

शान्ता ने कमरे में पहुँचकर दीपक को ऊँचा कर दिया। साथ ही वह कमरा उसकी सुन्दरता की किरणों से चमचम चमक उठा। ऐसा प्रतीत होता था मानो "छबि-गृह दीपसिखा जनु बरई।" शान्ता का मुख इस समय रक्त वर्ण हो रहा था, उसे अपने सिर में कुछ मीठा मीठा दर्द मालूम होता था, हृदय आत्मग्लानि से भरा हुआ था। उसने झटपट अपने भीगे वस्त्र बदल डाले और फिर गाव-तकिये के सहारे मसनद पर बैठ गई। फिर उसने अपने पास से एक छोटासा

चित्र निकाला, उससे बड़ी देर तक निर्निमेष दृष्टि से देखती रही। फिर एक दीर्घ निश्वास छोड़कर चित्र को रख दिया। शमादान की रोशनी पड़ने पर चित्र साफ़ दिखाई देने लगा, वह चित्र माधव का था। शान्ता ने उसे फिर उठा लिया और बड़ी देर तक उसकी ओर देखती रही; फिर उस चित्र को हृदय से लगाकर एक दीर्घ निश्वास त्याग-कर उठी और पलंग पर जाकर लेट गई। परिश्रम और थकावट के कारण उसे शीघ्र ही निद्रा देवी ने आ दबाया और वह सोते सोते स्वप्न देखने लगी।

उसने देखा कि सामने एक बड़ा विस्तृत समुद्र फैला हुआ है। संध्या का समय है, सूर्य भगवान् अस्ताचल को जा रहे हैं। उनका प्रतिबिम्ब शान्त समुद्र में प्रतिबिम्बित होकर उसकी सुन्दरता को बढ़ा रहा है। पृथ्वी, आकाश सब सुवर्ण वर्ण हो रहे हैं। वह स्वयं भी उस सुहावने समय में एक पर्वत के शिखर पर खड़ी हुई शोभा निरीक्षण कर रही है। सहसा उसकी दृष्टि एक कमल-पुष्प पर पड़ी जो पास ही एक शिवलिंग के पास किसी भक्त द्वारा लाया जाकर पड़ा था। उसे वह पुष्प अत्यन्त ही सुन्दर जान पड़ा। कुतू-हलवश उसे उठाकर हृदय से लगा लिया जिससे उसके चित्त को बड़ा ही सुख मिला। एकाएक सूर्य भगवान् अस्ताचल के गर्भ में विश्राम लेने के लिए चले गये। वसुन्धरा अन्धकारमय होने लगी। उस पर्वत-शिखर पर पाला गिरने लगा। शान्ता के हाथ का वह कमल मुर्झा गया और बड़ी ही विनीत दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। मानो उससे प्रार्थना कर रहा था कि मेरा भाग्य-सूर्य रूठ गया है इसी लिए मैं मलीन हो गया हूँ; कृपया मुझे अपने हाथ से मत फेंक दीजियेगा। कल सूर्य निक-

लते ही मैं फिर वैसा ही सुन्दर और आनन्द देनेवाला हो जाऊँगा। शान्ता ने उसकी प्रार्थना पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जिससे पुष्प और भी मलीन हो उठा। शान्ता ने उसे समुद्र में फेंक दिया। वह समुद्र की लहरों पर तैरता रहा। शान्ता ने वहाँ से जाना चाहा, परन्तु उसके पैर मानो जड़ पकड़ गये थे। वह वहाँ खड़ी खड़ी उस पुष्प को देखने लगी, पुष्प लहरों पर उसी प्रकार तैर रहा था। बर्फ़ खूब ज़ोर से गिरने लगी। शान्ता उसी शीत में खड़ी खड़ी काँपने लगी। वायु प्रबल वेग से बहकर उसे पर्वत-शिखर से ढकेलने की चेष्टा करने लगा शान्ता निर्निमेष दृष्टि से उसी पुष्प की ओर देखती रही। समुद्र में लहरें ज़ोर से उठने लगीं। पुष्प एक लहर पर बड़ा ऊँचा उठ गया। सहसा उस लहर को एक बड़ी लहर ने दबा लिया। फूल उस आक्रमण से कुछ विकृतसा हो गया। शान्ता के चित्त में कुछ खेद होने लगा। तुरन्त ही एक बड़ी लहर आई और उस कमल-पुष्प को अपने सिर पर उठाकर ले चली। पुष्प अत्यन्त ही चिन्तित दिखाई देता था। शान्ता को उस पुष्प से एक प्रकार की सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी वह बड़े चाव से अपनी शीत और वायु की आपत्तियों को भूलकर उसी की ओर देख रही थी। धीरे धीरे पूर्व की ओर लाली दिखाई देने लगी। सूर्य भगवान् के चोबदार और नक़ीब उनके आगमन की सूचना देने लगे। समुद्र में अभी भी वैसी ही भयानक लहरें उठ रही थीं। पुष्प एक बड़ी लहर पर चढ़ा हुआ बड़ा सुन्दर ज्ञात हो रहा था। वह लहर उसे लिये हुए पहाड़ की ओर चली आती थी। शान्ता का श्वास रुक रुककर चलने लगा। उस लहर ने बड़े ज़ोर से पहाड़ से टक्कर खाई। पुष्प अत्यन्त ही क्षत होकर शान्ता के पैरों

के पास आ गिरा। शान्ता ने बड़े चाव से दौड़कर उसे उठा लिया और बड़े प्रेम से चूमकर उसकी ओर देखने लगी। सूर्य भगवान् की सवारी आकाश में आ चुकी थी। उनकी तीव्र किरणों के पड़ने से शान्ता के शरीर की शीत भग गई, साथ ही पुष्प ने भी आँखें खोलीं। शान्ता को उस फूल के उन आँखों में कुछ परिचितसा ज्ञात हुआ। वह बड़े ध्यान से उसकी ओर देखने लगी। धीरे धीरे उन आँखों के चारों ओर आकृति बनने लगी। सहसा शान्ता ने उस पुष्प में माधव का प्रतिबिम्ब देखा, उसके मुख से एक चीख निकल गई और साथ ही उसके स्वप्न का अंत हो गया। उसकी आँख खुल गई।

सूर्य भगवान् कभी के निकल आये थे। उनकी किरणें एक रोशनदान में से होकर इस कमरे में शान्ता के मुख पर पड़ रही थीं। दिन बहुत चढ़ गया था। चीख का शब्द सुनकर एक दासी वहाँ दौड़कर आई और शान्ता की ओर देखने लगी। उसकी आँखें मानो प्रश्न कर रही थीं कि क्या बात है?

शान्ता चौंककर उठ बैठी, उसका चित्त अत्यन्त ही चञ्चल हो रहा था। माधव का चित्र अब भी उसके पास पलंग पर पड़ा था। दासी की दृष्टि बचाकर उसने उस चित्र को वस्त्रों के नीचे छिपा लिया और दासी की ओर देखकर कुछ लजाती हुईसी कहने लगी—कुछ नहीं केशनी! मैंने एक स्वप्न देखा था और उसी के पश्चात् मेरी आँख खुल गई। क्या हुआ? तुम यहाँ कैसे आ गई?

केशनी—मैं पास ही के लान में सो रही थी। रात को एक बार जो उठी तो आपके कमरे का शमादान बड़ा तेज़ प्रकाश फैंक रहा था। मैं यह देखने को कि आप सो रही हैं

था जग रहे हैं आपके कमरे में चली गई। मेरे जाने का कारण एक यह भी था कि यदि कोई वस्तु प्रकाश के इतने निकट हो कि अग्नि पकड़ ले तो मैं उसे अलग हटा दूँ! मैंने देखा कि आप सो रही हैं, परन्तु आपकी नींद सुख-निद्रा नहीं कही जा सकती थी। आप सोते हुए काँप रही थीं और कभी कभी उछल भी पड़ती थीं। मैं पुतली की भाँति आपको देखने लगी। फिर थोड़ी देर पीछे मैं सोने चली गई। दिन निकल आया परन्तु आपकी निद्रा भंग नहीं हुई। मैंने भी आपको जगाना उचित न समझा। मैं आपके जागने की प्रतीक्षा में बाहर बैठ गई। एकाएक एक चीख़ सुनकर मैं दौड़कर कमरे में आ गई!

शान्ता—ठीक है। मेरा चित्त रात को अधिक भीग जाने के कारण अत्यन्त ही उदास हो गया था, सिर भी कुछ भारी था। मैंने रातभर बुरे बुरे स्वप्न देखे हैं। अब भी चित्त अत्यन्त ही उद्विग्न है। हाँ! यह तो कह कि तू क्यों मेरे जागने का आसरा किये बैठी थी। कुशल तो है न?

केशनी—हाँ, कुमारी रानी, सब कुशल है। मैं आपको एक शुभसंवाद सुनाने आई हूँ। आज ही समाचार मिला है कि आपका विवाह जौली के राजा चन्द्रराव के पुत्र हरदेवराव से होना निश्चित हुआ है। क्यों राजकुमारीजी, विवाह हो जाने के पश्चात् हमें भूल तो नहीं जाओगी? मुझे तो राज-कुमारीजी, आप अपने साथ ही ले चलें तो अच्छा। मुझसे आपके बिना इस घर में एक पल भी नहीं रहा जायगा।

शान्ता—केशनी, हमें ऐसी बातें अच्छी नहीं लगती। हम अपनेआप ही दुखी हैं, हमें सताओ मत।

केशनी—वाह! वाह! राजकुमारी! तुम्हें बातें बनानी

तो भली प्रकार आती हैं। शुभसंवाद सुनादा था, कुछ मुँह मीठा करवातीं। यदि इतनी प्रसन्न हुई कि हमारा पुरस्कार भी भूल गईं तो इस प्रकार दुखी बनकर हमें डराने की न चेष्टा की होतीं! हाँ-हाँ! हम भी खूब जानती हैं। अभी ऐसी बातें बना रही हो, परन्तु अभी यदि कहीं कुमार को पा जाओ तो फिर......।

शान्ता—(बात काटकर) चूल्हे में गईं तुम और तुम्हारे कुमार। हमें और सताओगी तो रो दूँगी। ऐसा भी भला किसी को क्या सतावे?

केशनी—आज ऐसी उदासीनता और क्रोध का क्या कारण है। आज तो आप प्रातःकाल से कोई बात ही हँसकर नहीं करतीं। हम तो विवाह का समाचार सुनकर कूद पड़तीं। विवाह का नाम सुनकर किसी को उदास होते तो देखा नहीं। आप यह प्रसन्न होने के बदले मुझपर रंज क्यों होने लगीं?

शान्ता—मैं रंज नहीं हुई हूँ केशनी! परन्तु विवाह-संवाद से प्रसन्न नहीं हो सकती। मैं विवाह करूँगी ही नहीं।

केशनी—रामजी! ऐसा भी कहीं हो सकता है! क्या कभी स्त्रियाँ भी कारी रहती हैं?

शान्ता—रह क्यों नहीं सकती हैं? क्या पुरुषों में ही ऐसी कोई शक्ति होती है जो वे ब्रह्मचर्यव्रत पालन कर सकें? स्त्रियाँ पुरुषों से किस बात में न्यून हैं? स्त्रियों को संसार में वैसे ही अधिकार हैं जैसे पुरुषों को। केशनी, मैं आयु पर्यन्त ब्रह्मचारिणी ही रहूँगी। मैंने विवाह न करना ही निश्चय कर लिया है।

केशनी—राम राम! ऐसा भी कोई सोचता है। ऐसा सोचने से भी पाप होता है। क्या कभी स्त्रियाँ भी पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं? पुरुष लड़ाई में जाते हैं, बड़े बड़े काम करते हैं; स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर कभी नहीं हो सकतीं!

शान्ता—मूर्ख! क्या पुरुष ही लड़ाई लड़ना जानते हैं? स्त्रियों ने क्या कभी युद्ध करना सीखा ही नहीं? क्या स्त्रियों ने कभी कोई बड़ा काम ही नहीं किया? इतिहास उठाकर देखो। महाराज दशरथ की रानी कैकेयी ने युद्ध-क्षेत्र में राजा के रथ का धुरा बनकर उनकी सहायता की थी। यदि वे न होतीं तो राजा दशरथ की ख़ैर नहीं थी। महारानी सीताजी ने भी बारह वर्ष ब्रह्मचर्य रक्खा। महारानी रुक्मिणी ने भगवान् कृष्ण के रथ को युद्ध में संचालन किया। महारानी संयुक्ता ने पृथ्वीराज के साथ ही मुहम्मद ग़ोरी की सेना से किस योग्यता से युद्ध किया। राजस्थान में गोरा और बादल की माता तथा भगिनी किस प्रकार युद्ध करते करते मरीं। क्या यह सब रमणियाँ स्त्रियाँ नहीं थीं? अवश्य थीं! जब ये सब स्त्रियाँ इतने बड़े बड़े काम कर सकीं तो मैं एक अविवाहिता कन्या क्या ब्रह्मचर्यव्रत भी पालन नहीं कर सकूँगी? अवश्य ही कर सकूँगी। नहीं, मैं विवाह नहीं करूँगी। मैं पिताजी से कहे आती हूँ, मैं विवाह नहीं करूँगी!

यह कहकर शान्ता तेज़ी के साथ उस कमरे के बाहर हो गई।

सूर्य भगवान् अपना रथ वेग से बढ़ाये चले जा रहे हैं। उनके रथ की चमक से पृथ्वी का एक एक कोना तक उज्ज्वल हो रहा है। सरदार तुकोजी अपने कमरे में बैठे अपनी अर्द्धांगिनी रमा से वार्तालाप कर रहे हैं। उनके ढंग से ज्ञात होता है कि वे आपस में कोई विचार निश्चित करना चाहते हैं।

रमा—मैं फिर कहती हूँ कि शान्ता अब निरी बालिका नहीं है। उसका अब तक विवाह न करके हमने अन्याय किया है। कहीं चंचला हो गई तो फिर कुछ करते न बनेगा। कहिये, क्या कुछ निश्चित किया है?

तुकोजी—हाँ! निश्चय ही समझो। कल मेरे मित्र राजा चन्द्रराव का दूत आया था, वे शान्ता को अपने पुत्र हरदेवराव के लिये माँगते हैं। मैंने भी स्वीकारसा ही कर लिया है। केवल तुम्हारी ही सम्मति लेना रह गई थी। कहो, ठीक है न?

रमा—ठीक न होगा, अब तो कोई भी होता, विवाह करना ही पड़ता; फिर यह तो योग्य वर ही ठहरा। परन्तु हाँ, आपने शान्ता की घनिष्ठता माधव से बढ़ाकर अच्छा काम नहीं किया। सुना है,आजकल वह यहाँ नगर में आया हुआ है?

तुकोजी—हाँ, ठीक है। परन्तु मैं तो माधव को पाकर एक प्रकार से शान्ता से निश्चिन्तसा हो गया था। तुम्हारे बार बार कहने पर भी मैंने शान्ता के लिए और कोई वर नहीं ढूँढ़ा। मुझे क्या ख़बर थी कि माधव ऐसा मूर्ख और कापुरुष निकलेगा! ख़ैर, अब उसका नाम भी मत लो क्योंकि उससे भी पाप होगा! मैंने सब सिपाहियों को आज्ञा दे दी है कि माधव मेरे द्वार पर न चढ़ने पाये। यदि वह उद्दंडता दिखाये तो वध कर दिया जाय। मैं ऐसे कापुरुष जीव का इस पृथ्वी से उठ जाना ही अच्छा समझता हूँ। हाँ, तो तुम्हारी भी सम्मति है ही। अब मैं राजा चन्द्रराव को पत्र और शकुन भेजे देता हूँ। ठीक है न?

रमा—हाँ, ठीक है। मेरी तो यही सलाह है कि यदि इसी मास में शान्ता का विवाह कर दिया जाय तो अच्छा हो।

इसी समय शान्ता वेग से उस कमरे में आई और बोली—पिताजी; आपने मेरे विवाह के संबंध में माताजी की सम्मति की आवश्यकता समझी, परन्तु मेरी सम्मति की जिसके जीवनभर के सुख-दुख का निर्णय इस विवाह से है, आपने कोई भी आवश्यकता नहीं समझी क्या यह आपको उचित था ?

शान्ता की बातें सुनकर तुकोजी सन्न से रह गये, परन्तु रमा से न रहा गया। वह क्रुद्ध होकर बोली—लो, देखो तो कोई भी अपने ब्याह के सम्बंध में बोलता है ? लड़की, तूने लाज-शर्म सब खो दी। अरे लड़की का धर्म ही क्या, जिसे माँ-बाप ने सौंप दिया उसी की हो गई। तू सम्मति देनेवाली कौन है ? मैं पहले ही कहती थी कि लड़की को इस प्रकार स्वतन्त्रता न दो। लो, वह अब बराबरी करने को उद्यत है।

शान्ता—माताजी, क्रुद्ध न होइये। भला आप यह तो बतलाइये कि जब मेरे सारे जीवन का सुख-दुख ही इस ब्याह पर निर्भर है तो मैं फिर भला क्यों न बोलूँ ? इसमें लाज खोने की भला क्या बात है ? रही यह बात कि माँ-बाप जिसे सौंप दें, उसी की होकर रहूँ, तो यदि आप मेरा विवाह अन-जान-अवस्था में ही कर देतीं तो मैं कुछ भी चूँ न करती वरन् जिसको सौंप दी जाती उसी की होकर रह जाती परन्तु वह बात नहीं हुई; मुझे आपने बड़ी और समझदार होने दिया। मुझे भले बुरे का ज्ञान हो गया तो फिर क्यों नहीं मेरी भी सम्मति ली जाती ? पिताजी, आप ही कहिये मैं मिथ्या तो नहीं कहती ?

तुकोजी अब तक चुपचाप खड़े खड़े उसकी बातें सुन रहे थे। अब जब उनसे प्रश्न हुआ तो बोले—बेटी, यह ठीक है कि मैंने तुम्हारी सम्मति नहीं ली। मुझे सम्मति अवश्य ही

लेनी चाहिये, परन्तु बेटी, तुम्हारे इस प्रकार से छिप छिपकर चोर-राह से बाग़ में आने से मुझे तुमसे भय होने लगा है कि तुम कहीं कुछ अनुचित कार्य न कर बैठो, और इसी लिए मैंने तुम्हारी बिना सम्मति लिये ही अच्छा कुल देखकर तुम्हारा विवाह ठहरा दिया। तुम जानती हो कि मैं अपनी बात कभी नहीं टालता, तुम्हें इस विवाह में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

शान्ता—पिताजी, मैं भी अपनी बात कभी नहीं टलने देती। आपने ही मुझे सत्यवादी और वचन पर दृढ़ रहना सिखाया है। जो बात मैंने कभी किसी से नहीं कही वह अब आपसे कहती हूँ। पिताजी, मैंने आज तक माधवराव से ही प्रेम किया है। उन्हीं को मन में मैंने अपना भावी पति माना था। अब किसी अन्य को पति वरकर कुलटा नहीं कहलाना चाहती। पिताजी, मैं विवाह न करूँगी।

तुकोजी—क्या कहा कि तूने उस नीच नराधम कायर माधव को प्यार किया है? उसी को पति माना है? उस देश-द्रोही पर तुझे घृणा नहीं हुई? नहीं, मैं अपने कुल में कलंक नहीं लगने दूँगा। तुझे मेरे वचन की रक्षा करनी पड़ेगी। तुझे मेरा कहना मानना पड़ेगा। इसी विवाह से ही सहमत होना पड़ेगा।

शान्ता—पिताजी, मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं भंग कर सकती। मैं आपके किये प्रस्ताव से सहमत नहीं हो सकती। आप यदि आज्ञा दें तो मैं विष खाकर प्राण दे सकती हूँ, परन्तु इस जीवन में यदि मैं विवाह करूँगी तो माधवराव के ही साथ करूँगी अन्यथा आजन्म ब्रह्मचारिणी रहूँगी।

तुकोजी क्रोध से उन्मत्त हो गये। उनके दोनों नथने फूल गये, श्वास शीघ्र चलने लगी और नेत्र रक्तवर्ण हो गये। उन्हें

अपनी बात इस प्रकार लौटी जाते हुए देखने का अभ्यास न था। वह कुछ समय क्रोध के मारे बोल भी न सके। फिर बोले— मैं पहले ही जानता था कि तू पापिनी मेरे उज्ज्वल कुल को कलंक लगावेगी। हा! तू मर ही क्यों न गई। क्या तू मेरा कहना न मानेगी? नहीं, तुझे मानना पड़ेगा। तुझे उस देश-द्रोही को भूलना पड़ेगा। मेरी बात माननी पड़ेगी।

शान्ता—पिताजी, आप ऐसी अप्रिय बातें मुख से न निकालिये। इससे मेरी मानहानि होती है। याद रखिये, जिस घर में स्त्रियाँ कष्ट पाती हैं, जहाँ उनकी मानहानि होती है, वह घर शीघ्र ही नष्ट होता है। मैं माधवराव को भूल नहीं सकती, मैं आजन्म उन्हीं की हूँ। आप मेरे सामने उनकी निन्दा करके मुझे पाप का भागी मत बनाइये।

तुकोजी—मेरे हृदय में उस पापी के लिये स्थान नहीं है, मैं यह नहीं देख सकता कि तू उसके लिये ब्रह्मचर्यव्रत पालन करे।

शान्ता—यदि आपके हृदय में उनके लिए स्थान नहीं है, तो मुझे भी हृदय से निकाल दीजिये। मैं आपकी आज्ञा पालन करने में असमर्थ हूँ। इस लिए मुझे भी आज्ञा दीजिये कि मैं किसी निर्जन स्थान में बैठकर उनको स्मरण करूँगी।

तुकोजी—वह भी कर सकूँगा। अपने हृदय में जिस लता को अब तक पोसकर बड़ा किया है उसे अपने ही हाथों उखाड़कर फेंक भी सकूँगा; परन्तु एक देश-द्रोही को अपने हृदय में स्थान कदापि न दूँगा। यही मेरा कर्तव्य है! मैं अपने कर्तव्य से विचलित नहीं हो सकता। तेरा प्रेम भी मुझे कर्तव्य-पथ से खींच नहीं सकता।

शान्ता—यदि यह बात है और आपको मेरी मान-रक्षा का इतना ही ध्यान है तो मैं ही अपना वचन पूरा करूँगी। अपने कर्तव्य-पथ पर अटल रहूँगी। मैं जिसे एक बार पति बना चुकी, उसी की उपासना में जीवन व्यतीत करूँगी। अच्छा, अब आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने में समर्थ हूँ। अच्छा, जाती हूँ, प्रणाम। परन्तु याद रखियेगा कि आप अपने कार्य पर पछतायेंगे और आपको माधवराव को अपने हृदय में स्थान ही नहीं वरन् सर्वोच्च पद देना पड़ेगा।

शान्ता यह कहकर जल्दी से बाहर चली गई। तुकोजी उसकी ओर देखते ही रह गये।

चतुर्थ परिच्छेद

टोरन-दुर्ग के एक संगीन छोटेसे कमरे में अंधकार छाया हुआ है। परन्तु छत के पास एक छोटेसे प्रकाश-द्वार से तारों का कुछ कुछ प्रकाश कमरे में आकर कुछ देर दृष्टि ठहरने पर अन्दर की हरएक वस्तु धुँधली धुँधली दिखाई देती है। नीचे पृथ्वी पर पुआल बिछा हुआ है। सामने एक कोने में पानी का गगरा भरा है और उस पुआल के ऊपर ओढ़ने का एक कम्बल लिपटा-लिपटाया पड़ा हुआ है। माधव उस छोटीसी कोठरी में इधर-उधर टहल रहे हैं और अपने भाग्य की आलोचना कर रहे हैं। कमरे के बाहर एक सैनिक के टहलने की ध्वनि आ रही है। माधव सोच रहे हैं—

"कैसा दुर्भाग्य है, हज़ारों बार मृत्यु की आकांक्षा की, हज़ारों बार आत्मघात करना चाहा, परन्तु सब व्यर्थ। कोई न कोई विघ्न आ ही जाता है। कार्य कभी पूरा नहीं होता, अब की सोचा था कि दुर्ग-द्वार रात्रि को विना दुर्गाध्यक्ष की आज्ञा के खोला है, नियम के अनुसार मृत्यु ही मिलनी चाहिये थी, परन्तु हतभाग्य मनुष्य के लिए नियमों का भी पालन नहीं किया जाता। मैं जिस समय उस सेना के व्यूह में लाकर खड़ा किया गया उस समय मेरा चित्त कितना आह्लादित था। सैनिकों के शस्त्रों को मैं कैसे प्रेम की दृष्टि से देख रहा था। मुझे निश्चय था कि अब किसी क्षण मृत्युदंड की आज्ञा होती है। अब तनिक देर में अपनी प्रेयसी कृपाण को आलिंगन करूँगा। परन्तु जिस समय मुझसे सरदारों ने प्रश्न करना आरम्भ किया मैं चौंक उठा। मेरी दृष्टि सरदारों की ओर उठ गई। मैं कोई बात भी न बना सका, सब हृदय का उद्वेग और आत्महत्या के विचार साफ़ साफ़ मुख से निकल गये। फिर जो दृष्टि उठाकर देखा तो मनसबदार आबाजी सोनीदेव को अपनी ओर देखते पाया। वह मुझे एकटक देख रहे थे। उनकी वह दृष्टि मैं इस जीवन में कदापि नहीं भूल सकता। उनकी उन ज्योतिर्मयी सुन्दर काली आँखों ने हास्यान्वित प्रकृति किन्तु बड़े गम्भीर भाव से मेरी ओर देखा। वह दृष्टि मेरे हृदय को चीरकर निकल गई। मेरी सारी प्रसन्नता वायु में लीन हो गई, हृदय ने मानो धड़कना बंद कर दिया। मेरी दृष्टि से मिलते ही मेरी आँखें लज्जा से नीचे झुक गईं। मैं अपने को सँभाल न सका। मेरी आँखें भर आईं। दुर्बलता की पराकाष्ठा हो गई। हा, उसी क्षण मुझे मृत्यु क्यों नहीं आ गई? उन नेत्रों की उस दृष्टि को देखने से तो मर जाना सहस्र गुना श्रेष्ठ

था। उस दृष्टि में घृणा नहीं थी,क्रोध भी नहीं था। हाँ, गम्भीरता अवश्य थी, कुछ खेद और दया की मात्रा भी पाई जाती थी। मैं अधिक देर उनकी ओर नहीं देख सका। मुझे ऐसा ज्ञात होता था मानो पृथ्वी मेरे पैरों के नीचे से निकली जा रही है। ईश्वर तू यदि उस समय वज्र गिरा देता! हा! दैव, मुझे क्या इसी दिन के लिए जीवित रक्खा था?

"मुझे उन नेत्रों को देखकर इतनी लज्जा अवश्य आ गई थी परन्तु एक आशा का दीपक धीरे धीरे फिर भी टिमटिमा रहा था। मृत्यु निश्चय ही थी पर फिर इस थोड़े समय के लिए यदि लज्जा भी आ गई तो क्या? इस समय के व्यतीत होते ही मुझे संसार के सारे दुखों से छुटकारा मिल जायगा। फिर इस जीवन में मुझे अपने ऊपर किसी को करुणा करते देखकर लज्जा नहीं आयेगी।

"जिस समय में मैं यह सोच रहा था उसी समय सरदारों में मेरे अपराध पर वाद-विवाद हो रहा था। सहसा मेरा ध्यान भंग हो गया। मेरी आशा का दीपक निराशारूपी वायु के लगने से एक ठंडी साँस भरकर मेरी ओर करुणा की दृष्टि डालता हुआ बुझ गया। मुझे आज्ञा सुनाई गई। मृत्यु की नहीं, वरन् ताड़ना और कारावास की। मैं वहीं सिर पकड़कर बैठ गया। सरदार लोग उठकर चले गये, सैनिक मुझे उठाकर ले गये।"

इतना सोचते सोचते माधव ठहर गये और बड़े ध्यान से द्वार की ओर देखने लगे। द्वार के ताले में ताली घूमने की आवाज़ सुनाई दी, फिर साँकल का खटका हुआ। द्वार खुला और एक सैनिक भीतर आया। माधव उसे देखकर आगे बढ़ आये। सैनिक ने कहा—माधव, मैं आबाजी की आज्ञा

से तुम्हें महाराज शिवाजी की आज्ञा सुनाने आया हूँ। तुम्हें क्षमा मिल गई है। कल तुम कारागार से मुक्त हो जाओगे। लो, मैं तुम्हारे लिए कुछ खाना भी लाया हूँ, इसे खा लो और आराम से विश्राम करो। यह कहकर सैनिक चला गया। वह ज्यों के त्यों खड़े रहे। फिर उसी पहले की भाँति टहल टहलकर सोचने लगे—"कल फिर मुक्त हो जाऊँगा! महाराज शिवाजी तो यहाँ से तीन मील रायगढ़ में हैं, फिर उन तक मेरा समाचार न-मालूम कैसे पहुँच गया। हा! आबाजी सोनीदेवी न-जाने मुझे क्या समझते होंगे। हाय, भूल गया, नहीं तो इस सैनिक से कोई शस्त्र माँग लेता तो अच्छा होता। उसी से प्राण खो देता। हा! क्या करूँ विधाता ही अनुकूल नहीं हैं! उसके बिना कोई काम नहीं सँभलता। इसी प्रकार सोचते सोचते उस पुआल के बिछौने पर माधव लेट गये। उनका चित्त अत्यन्त ही व्याकुल हो रहा था। उन्हें शान्ता के ध्यान ने आ दबाया ध्यान आते ही शान्ता की वह सुन्दर मूर्ति प्रत्यक्ष की भाँति उनकी दृष्टि के सामने चित्रितसी हो गई। वे बड़े प्रेम से उसे देखने लगे। फिर उस मूर्ति को संबोधन करके कहने लगे—"देवि! मेरे जीवन की आशा! तुमने मुझे झिड़क दिया सही, परन्तु तुम अपने हृदय से मेरी मृत्यु की कामना नहीं कर सकीं। यदि तुम मेरी मृत्यु होने की आकांक्षा करती होतीं तो मेरे मार्ग में कभी इतनी बाधायें न उपस्थित होतीं। सत्य कहना, क्या तुम मुझे क्षमा कर सकती हो? क्या तुम मेरी हो सकती हो?"

शान्ता की मूर्ति उन्हें कुछ मुसकुराती हुई प्रतीत हुई। फिर धीरे धीरे वह उनके दृष्टि-पट से ओट होने लगी। यहाँ

तक कि अंत को समस्त रूप से अन्धकार में लीन हो गई। चारों ओर अंधकार ही अंधकार हो गया। माधव निद्रादेवी की गोद में विश्राम लेने लगे। दिनभर के थके हुए थे, प्रगाढ़ निद्रा आनी चाहिये थी, परन्तु यह न हुआ; उन्हें स्वप्न दिखाई देने लगे। उन्होंने देखा—एक बड़ा आलीशान महल है। उसके आँगन में भीड़ के मारे पैर रखने को भी स्थान नहीं है। हर-एक व्यक्ति दूसरे को ठेलकर सबसे पहले अंदर जाने का प्रयत्न कर रहा है। उन्होंने यह भी देखा कि वह खुद भी उस भीड़ में एक ओर खड़े हुए आगे जाने के लिए हाथ-पैर मार रहे हैं, परन्तु भीड़ इतनी अधिक है कि आगे जाने को राह ही नहीं मिलती यह तो रही उस मकान में अंदर जानेवालों की बात। उस मकान से कुछ लोग निकल भी रहे थे। माधव ने देखा कि उनमें से कुछ तो प्रेमाश्रु बहाते हुए अपने हृदय की कामना (वस्त्र, भोजन इत्यादि) को पूर्ण करवाकर, और मिली हुई वस्तुओं को बड़े प्रेम से दोनों हाथों से अपने हृदय से लगाये हुए, कुह-नियों से राह करते हुए बाहर जा रहे हैं, परन्तु कुछ उनमें से निराशा के आँसू बहाते खाली हाथ भी लौटते हुए दिखाई दिये।

वहाँ इतनी भीड़ थी परन्तु एकत्रित व्यक्ति सब ऐसे चुप थे जैसे उनके मुँह में जिह्वा ही नहीं है। कोई भी किसी से धीरे से भी बात करना नहीं चाहता था। सबका लक्ष्य केवल उस महल के भीतर ही जाना था। वे सब लोग कभी कभी उन भीतर से निकले हुए मनुष्यों को बड़ी ही लालसाभरी दृष्टि से देखते थे।

माधव किसी प्रकार भीड़ को चीरते हुए महल के द्वार पर पहुँच गये। द्वार सुवर्ण का बना था और उसमें भाँति

भाँति के रत्न जड़े किवाड़ बंद थे। उन किवाड़ों पर उज्ज्वल रत्न-खचित मोटे अक्षरों में लिखा था—"उद्योग से बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं है। उद्योगी पुरुषों की ईश्वर आप सहायता करता है। उनके लिए कोई वस्तु अदेय नहीं है। उद्योग करो और इन भारी भाग्य-पटों को खोलो, देखो तुम्हें क्या मिलता है।" माधव ने किवाड़ों को ढकेलकर खोलना चाहा परन्तु वह टस से मस भी न हुए। माधव ने फिर दुगने परिश्रम से उद्योग किया। किवाड़ फिर भी न हिले। पीछे से मनुष्यों की भीड़ एक दूसरे को हटाती हुई आगे बढ़नी चाहती थी उसे उसी ओर रोके हुए माधव ने एक बार और जोर लगाया। अब की बार किवाड़ कुछ थोड़े से खुल गये। माधव ने अपना सिर उनके बीच में डाल दिया और किसी प्रकार महल के अन्दर घुस गये। किवाड़ फिर पूर्ववत् बंद हो गये।

माधव ने अन्दर आकर देखा कि एक बड़े सिंहासन पर एक विशालकाय देवी की प्रतिमा बैठी है। मुख पर एक प्रकार की गम्भीरता छाई हुई है। नेत्रों से प्रेम मानो फूटा पड़ता है। सामने भाँति भाँति की वस्तुओं का ढेर लगा हुआ है। माधव को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि देवी की गोद में शान्ता बैठी है। उसका मुख उदास है। चित्त में कोई चिन्ता छाई हुई है। माधव थोड़ी देर तक तो वहाँ का वैभव देखकर किंकर्तव्यविमूढ़-से खड़े रहे, फिर देवी-प्रतिमा को साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर जिज्ञासु की भाँति देवी की ओर देखकर बोले—"देवि तुम सर्वज्ञ हो। तुम्हारे आगे अपने मन का भाव मैं इसी लिए नहीं खोलता हूँ तुम स्वयं मेरे मन का हाल जानती हो। हे देवि, मेरा मन एक

चिन्ता के कारण अत्यन्त ही खिन्न रहता है। मेरी मनोकामना पूर्ण कर दो।" देवी का मुख और भी गम्भीर हो उठा। उसने एक ओर को अँगुली उठाई और माधव से कहा—"इधर देखो। बोलो, क्या देखते हो।"

माधव ने उस ओर सिर उठाकर देखा। नीला आकाश था, परन्तु उनके देखते ही देखते उसमें बादल घिर आये। (उन्होंने जो देखा कह दिया। देवी फिर बोली—"अब और क्या देखते हो?" उन्होंने फिर देखा। दो ओर से दो बिजली की रेखायें आईं और आपस में लड़ गईं। बड़ा घोर शब्द हुआ, फिर अन्धकार हो गया। उन्होंने देवी की ओर देखा। देवी अपने सिंहासन पर खड़ी थी और एक हाथ में शान्ता का हाथ पकड़े हुए थी। इनको अपनी ओर देखते देख वह बड़े गम्भीर स्वर से कहने लगी—"माधव, तुमने देश का भविष्य देख लिया। अब लो, मैं तुम्हें यह अमूल्य रत्न देती हूँ, इसकी अच्छी प्रकार रक्षा करना, सावधान!" यह कह कर देवी ने शान्ता को उनकी ओर बढ़ा दिया। माधव प्रसन्न हो उठे, उन्हें रोमांच हो आया। बड़े प्रेम से शान्ता की ओर बढ़े। सहसा अन्धकार हो गया। उन्होंने दृष्टि उठाकर देखा; न महल है न देवी है और न शान्ता ही है। वे एक घने जंगल में अकेले जा रहे हैं। उन्हें बड़ा दुख हुआ। शान्ता को पाकर भी उसे न पा सके, प्याला ओठों तक आकर टूट गया। फिर उन्होंने अपनी अवस्था पर ध्यान दिया। चारों ओर जङ्गली जीव डोल रहे हैं। कहीं सिंह दहाड़ रहे हैं। अभी यह अपनी दशा पर विचार भी नहीं कर पाये थे कि इन्होंने देखा कि एक स्त्री अत्यन्त ही मलीन वस्त्र पहने हुए है। उसके पाँव फट गये हैं जिनसे रुधिर बह रहा है, उसके लम्बे

केश बिखरे हुए हैं। यह उसे बड़े ध्यान से देखने लगे। वह भी इन्हीं की ओर बढ़ी चली आ रही थी। कुछ पास आने पर इन्होंने उसे पहचाना कि शान्ता है। इनका हृदय उसे इस दशा में देखकर टुकड़े टुकड़े हो गया। यह उसकी ओर बढ़ने लगे। इसी समय एक बाघ झपटकर आया और उसे उठाकर ले चला। स्त्री चिल्लाने लगी।

चिल्लाने की आवाज़ सुनकर यह उसकी ओर दौड़े। यहीं इनकी आँख खुल गई।

सूर्य भगवान् अपनी किरणों से संसार को तप्त कर रहे थे। पास ही इनका प्रहरी खड़ा इन्हें ज़ोर ज़ोर से पुकार रहा था। यह आँखें मलते हुए उठ बैठे। इनका दिल धड़क रहा था, श्वास वेग से चल रही थी! सैनिक इनकी ओर देखकर कहने लगा—माधव, उठो तुम मुक्त हो गये हो। जाओ, तुम्हें मनसबदार आबाजी ने बुलाया है।

आबाजी सोनीदेव को शिवाजी के शिक्षक दादाजी कन्हाईदेव ने युद्ध और अर्थ-शास्त्र की शिक्षा दी थी। इन्होंने अपनी वीरता के कारण मनसबदार का पद प्राप्त किया था। इस समय यह जिस सेना में माधव था उसके मनसबदार थे। शिवाजी के यह बड़े ही प्रिय गुरु-भाई और विश्वस्त सरदार थे। जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं, इनकी अवस्था माधव से केवल चार पाँच ही वर्ष अधिक थी। माधव उनका नाम सुनते ही इनकी वही दृष्टि याद आ गई। यह सोचने लगे कि यदि और कोई होता तो मैं विना किसी संकोच के चला जाता, परन्तु आबाजी के सम्मुख मेरी आँख कैसे उठेगी? यदि और कोई समय होता तो वह बात टाल जाते परन्तु इस समय कोई भी बात उन के अनुकूल नहीं थी। अभी

अभी वे स्वप्न देखते देखते उठे थे, चित्त अभी शान्त भी न हुआ था। वे कुछ सोचते हुए उठ बैठे और पुआल में से एक तिनका निकालकर उसे मोड़ने-तोड़ने लगे। फिर उसी प्रकार उस तिनके को प्राणदण्ड देते वे आबाजी के निवासस्थान की ओर चल दिये। उस समय उनके वस्त्र अस्तव्यस्त हो रहे थे। उनके प्रत्येक अंग से कारावास की गंध आ रही थी। उसी अवस्था में उन्होंने जाकर आबाजी के बैठक में क़दम रक्खा। आबाजी ने कहा—"आओ।" माधव आगे बढ़कर खड़े हो गये उन्होंने तिनका अपने मुँह में रख लिया और जिह्वा से उसे भीतर को ठेलने लगे। दोनों थोड़ी देर चुप रहे। कमरे में सन्नाटा छाया रहा। फिर आबाजी गम्भीर स्वर से बोले—माधव! तुम्हें ज्ञात है कि तुम किस ओर जा रहे हो?

माधव—जानता हूँ, नरक को ओर!

आबाजी—हाँ, ठीक है तुम शीघ्र ही नरक में जा रहे हो। शीघ्र ही तुम्हारा अधःपतन हो रहा है।

माधव ने देखा कि आबाजी उन्हें फिर उसी दृष्टि से देख रहे हैं। उन्हें अपने पैरों के नीचे से पृथ्वी खिसकती हुई ज्ञात होने लगी। उन्होंने उस तिनके को मुँह में फिर घुमाना आरम्भ कर दिया और चुप खड़े रहे। आबाजी फिर कहने लगे—माधव, मैंने जब से होश सँभाला है और महाराज शिवाजी के साथ आया हूँ, बहुतसे मनुष्यों को इस राह जाते देखा है। मुझे उनकी अवस्था पर बड़ा ही दुख हुआ है परन्तु मुझे आज तक इतना दुख कभी नहीं हुआ जितना तुम्हें इस दृढ़ता से अधःपतन की ओर जाते देखकर होने लगा है।

सैनिक माधव की आँखों के सामने के दृश्यों पर मानो

एक हलकासा परदा पड़ गया। उन्हें वे सब हाथ धुँधले दिखाई देने लगे। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो आबाजी सिकुड़ेसे जा रहे हों। वे बड़ी कठिनता से बोले—महाराज, मैं एक सामान्य सैनिक हूँ। यदि मुझसा निकम्मा मनुष्य अंधे कुएँ में भी गिर जाय तो आपको कोई शोक या चिन्ता न होनी चाहिये।

आबाजी का मुख और भी गम्भीर हो गया। वे बड़े खेद के साथ कहने लगे—माधव, तुम एक शिक्षित युवक हो। तुम अपनी स्थिति से अच्छा लाभ उठा सकते हो। परन्तु यदि तुम इतने पर भी जानबूझकर ऐसी बात कहते हो तो इससे यही ज्ञात होता है कि तुम्हारा घोर अधःपतन हो गया है। इतना अधःपतन तो मेरी कल्पना के भी बाहर है। मैं उसकी मात्रा की जाँच तुम्हारे ही ऊपर छोड़ देता हूँ। मैं तुम्हारी अवस्था अच्छी प्रकार जानता हूँ।

माधव के नेत्रों के सामने और भी अँधेरासा छा गया। आबाजी का शरीर उन्हें और भी सिकुड़ता हुआ ज्ञात होने लगा। उन्होंने अपनी दृष्टि ठीक करने को ऊपर की ओर देखा। उनकी दृष्टि आबाजी की दृष्टि से जा मिली। उस दृष्टि के मिलने का उनके हृदय पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। उन्हें अपना जी उमड़ता हुआ ज्ञात होने लगा। उन्होंने अपना आँसू छिपाने को अपनी दोनों आँखें हाथों से ढक लीं। उनको ऐसा ज्ञात होने लगा मानो उनका हृदय दुख के वेग से फटा जाता हो। आबाजी यह देखकर कहने लगे—माधव, मैं तुम्हारा यह हार्दिक पश्चात्ताप देखकर जितना प्रसन्न हुआ हूँ उतना अपनी पूज्य माताजी के चरणों में सुवर्ण-मुद्राओं का ढेर भी समर्पित करके न होता। क्या तुम्हारी माता अभी जीवित हैं ?

माधव—ईश्वर की कृपा से उनका स्वर्गवास हो चुका है।

आबाजी—यदि तुम अपनी वीरता और पराक्रम की प्रशंसा देश देश में शत्रु-मित्र-दल के हरएक सैनिक के मुख से निकलते हुए सुनते तो तुम्हारी इच्छा होने लगती कि तुम्हारी माता अभी भी जीवित होतीं और तुम्हारी इस कीर्त्ति को सुनकर फूली अंग न समातीं और बड़े गर्व से कहतीं कि यह मेरे पुत्र की कीर्त्ति पताका फहरा रही है।

माधव—क्षमा कीजियेगा। पूजनीय माताजी को भी मेरा कोई गौरव का कार्य सुनाई न देता। उन्हें मुझे पुत्र-रूप में पाकर गर्व होने के स्थान पर अपने उन्नत मस्तक को लज्जा से अवनत करना पड़ता। हाँ, अवश्य ही वह मेरे ऊपर प्रेम और दया करतीं परन्तु गर्व ? नहीं, कदापि नहीं—परन्तु नहीं, क्षमा कीजिये। अब इन बातों से ही क्या ? महाराज, मैं एक दरिद्र-दुखिया हूँ। आपके सहारे पड़ा हूँ जो मन में आवे मेरा कीजिये।

इतना कहकर माधव ने करुणा से अपने दोनों हाथ ऊपर उठा दिये। आबाजी बोले—मित्र...

माधव—महाराज, भगवान् आपका भला करे।

वह फूट फूट कर रोने लगे। आबाजी फिर कहने लगे—सावधान हो माधव, देखो, तुम इस समय एक भीषण खड्ड की ओर बढ़े चले जा रहे हो। यदि थोड़ी देर और इसी प्रकार चले तो जो परिणाम होगा उससे तुम अनभिज्ञ नहीं हो। मैं तुमसे अधिक जानता हूँ, यदि तुम इसी प्रकार फिर चले तो तुम कलंकित हो जाओगे; परन्तु जो मनुष्य इस प्रकार पश्चात्ताप के आँसू बहा सकता है वह किसी प्रकार कलंकित होना नहीं चाहेगा। क्यों ?

माधव—(कम्पित स्वर से) सत्य है महाराज !

आबाजी—देखो माधव, कर्तव्य-पालन से बढ़कर संसार में कोई भी वस्तु नहीं है। कर्तव्य के सामने इष्ट-मित्र, बन्धु-सम्बन्धी आदि सभी कुछ नहीं हैं। हरएक मनुष्य चाहे वह किसी अवस्था में क्यों न हो, अपना कर्तव्य भली प्रकार से पालन कर सकता है। इससे उसके चित्त को शान्ति-लाभ होती है और यदि अभाग्यवश वह अपने कर्तव्य-पालन करने पर भी औरों से न सराहा जाय तो अपनी दृष्टि में तो उसका मान बढ़ ही जाता है। एक सामान्य सैनिक को भी, जिसे तुम निकम्मा मनुष्य कहते हो, इस भयानक समय में अपना गौरव दिखाने और अपने सौभाग्य के चमकाने का अच्छा अवसर है। वह इतने साक्षियों के सामने सर्वदा अपना कर्तव्य पालन करते रहने से ही क्या सारी सेना में नहीं सराहा जाता ? अवश्य ही सराहा जाता है। यही नहीं वरन् उसकी कीर्त्ति-पताका देश-देशान्तरों में फहराने लगती है। सोचो माधव ! जो कुछ तुम कर चुके वह कर चुके, उसे भूल जाओ और अपने जीवन में एक नया प्रश्न खोल लो। अब भी लौट पड़ो, और सीधी राह पर आ जाओ।

माधव—महाराज, मैं अपने भरसक प्रयत्न करूँगा। मुझे अपना कार्य दिखाने के लिए केवल एक उदार सच्चे साक्षी की आवश्यकता है !

आबाजी—मैं तुम्हारा आशय समझ गया। आज से मैं तुम्हारे कार्यों का सर्वदा सच्चा साक्षी रहूँगा।

माधव आबाजी सोनदेव के पैरों पर गिर पड़े। उस समय सूर्य भगवान् आकाश में चढ़ आये थे। माधव आबाजी की ज्योतिर्मयी सुन्दर काली आँखों के सामने से हटकर

बाहर आये। उनके मुख पर एक विचित्र शान्ति और प्रसन्नता झलक रही थी। उनका जीवन-स्रोत आज से और ही ओर बहने लगा। वे दूसरे ही माधव हो गये।

पंचम परिच्छेद

पुरंधर के दुर्गाधीश आग़ाख़ाँ की आकस्मिक मृत्यु ने पुरंधर में हलचल मचा दी है। उनके तीनों पुत्र ग़ाज़ीखाँ, मीरखाँ, और तुराबखाँ अपने मृत पिता के अधिकार को अपनाने के लिए एक दूसरे से लड़ने लगे। आग़ाख़ाँ के जीवनकाल में ही इन तीनों भाइयों में आपस में हीं नहीं बनती थी। आग़ाखाँ सदैव सोचा करते थे कि न-जाने ये तीनों मेरे मरने के पश्चात् कैसे रहेंगे। उन्हें यह बात सूझ गई थी कि मेरी आँख मिचते ही तीनों में दुर्ग के अधिकार के लिए युद्ध अवश्य होगा। पुरंधर का दुर्ग बीजापुर-राज्य के अधीन था परन्तु सुलतान की ओर से शासक में ढिलाई होने के कारण सारे बीजापुर के अधीनस्थ दुर्गाधीश लोग सब कार्यों में पूर्ण स्वतंत्रता का व्यवहार करते थे। पुरंधर के दुर्गाधीश आग़ाखाँ ने स्वातन्त्र होने की ओर एक पद और भी बढ़ा दिया था। वे राज्य-कर भी राज्य-कोष को नहीं भेजते थे। वह इसी सोच में थे कि किसी प्रकार पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर लें और इसी लिए सेना का संग्रह भी कर रहे थे। क्योंकि राज्य-कर बंद हो जाने पर युद्ध होना अनिवार्य था।

ऐसे समय में उन्हें अपने पुत्रों का आपस का यह मन-मुटाव देखकर बड़ी चिन्ता हुई किन्तु वे आपसके इस वैमनस्य को दूर कराने के पूर्व ही अपने विचारों को अपने साथ लिये हुए काल के कराल गाल में चले गये।

आग़ाखाँ तो इधर स्वतन्त्र होने को धुन में लगे हुए थे उधर उनके ज्येष्ठ पुत्र ग़ाज़ीखाँ दुर्ग की सेना में अपने-आपको सर्वप्रिय बनाने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने शस्त्र चलाने में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। वे सेनानायकों से मेल बढ़ाने लगे, उन्हें भोज इत्यादि देते और हर प्रकार से उनकी आवभगत करते थे। उनका अभिप्राय था कि वे अपने पिता के जीवनकाल में ही सेना के अध्यक्ष बन जायें। उनके दोनों कनिष्ठ भ्राताओं को उनकी इस कूटनीति को कुछ भी ख़बर न थी। वे दोनों अस्त्र चलाने में अपने ज्येष्ठ भाई से अधिक योग्यता रखते थे। वे लोग अपने से हीन पद के मनुष्य से घनिष्ठता करना घृणित समझते थे इसी लिए वे कभी किसी सेनानी या सेनानायक से बात नहीं करते थे। उनकी अपनी एक अलग टोली थी। उसी को साथ लेकर वे बहुधा दुर्ग के बाहर आखेट को जाया करते थे। ग़ाज़ीख़ाँ भी कभी कुछ सैनिकों और सेनानायकों के साथ आखेट की खोज में जाते थे; परन्तु भाई भाई कभी साथ जाते नहीं देखे गये। आग़ाखाँ की मृत्यु ने पुरंधर में हलचल मचा दी। तुराबखाँ और मीरख़ाँ उस समय आखेट को गये थे। ग़ाज़ीख़ाँ ने समय अनुकूल देखकर दुर्ग पर अधिकार जमा लिया। सेना सब कहने में थी ही कुछ अधिक झंझट न करना पड़ा। उनकी आज्ञा से दुर्ग के द्वार बन्द कर दिये गये और सैनिकों को आज्ञा मिल गई कि

तुराबख़ाँ और मीरख़ाँ दुर्ग के अंदर न आने पावें और यदि आवें तो बंदी होकर।

तुराबख़ाँ और मीरख़ाँ को इधर की कुछ भी ख़बर न थी। वे लोग अपने साथियों के साथ दूर जंगल में शिकार खेल रहे थे। एक दिन सन्ध्या-समय वे शिकार से पूर्णतया निराश होकर लौटे थे और विश्राम ले रहे थे कि दूर से एक अश्वारोही इन्हें आता दिखाई दिया। यह एकदम चौकन्ने हो गये। शत्रु की सम्भावना होते ही यह शस्त्र निकाल लिये और सतर्क होकर खड़े हो गये। अश्वारोही और भी निकट आ गया। निकट आने पर इन्होंने उसे पहचाना कि जमशेदख़ाँ है। जमशेदख़ाँ आगाख़ाँ के मन्त्री का इकलौता बेटा था। वह ग़ाज़ीख़ाँ से हार्दिक जलन रखता था। बहुधा वह तुराबख़ाँ ही के साथ रहता था। तुराबख़ाँ भी उससे बहुत ही प्रेम करते थे। इस बार जब तुराबख़ाँ मृगयार्थ जाने लगे तो जमशेदख़ाँ स्वास्थ्य कुछ ठीक न होने के कारण दुर्ग में ही रह गये थे। कुछ दिन पश्चात् इन्होंने अपने पिता से आगाख़ाँ की मृत्यु का संवाद सुना। साथ ही ग़ाज़ीख़ाँ को जो दुर्ग पर अधिकार जमाते देखा तो इनसे संतोष न हो सका और उसी प्रकार अस्वस्थ शरीर लेकर इन्होंने अपने मित्रों को जंगल में ही इस भयानक घटना की सूचना देना ठहराई।

जमशेदख़ाँ के मुँह से सब समाचार सुनकर तुराबख़ाँ सन्न रह गये। उन्हें अपने पिता की मृत्यु के दुख के साथ साथ ग़ाज़ीख़ाँ के अधिकार जमा लेने का बड़ा ही दुख हुआ। वे चुपचाप अपने भाई मीरख़ाँ के मुख की ओर देखने लगे। मीरख़ाँ उस समय क्रोधोन्मत्त हो रहे थे। उन्होंने उसी क्षण अपने सब साथियों को कूच की आज्ञा दी। तुराबख़ाँ

भी उनके साथ ही चलने को थे परन्तु उनके मित्र जमशेदख़ाँ का स्वास्थ्य कुछ तो पहले से ही अच्छा नहीं था और फिर इस यात्रा की थकन ने उन्हें यात्रा करने के सर्वथा अयोग्य कर दिया। इस कारण तुराबख़ाँ दो भृत्यों के साथ अपने मित्र को लेकर वहीं रुक गये। शेष सब लोग मीरख़ाँ के साथ चले गये।

तुराबख़ाँ अपने मित्र के लिए रुक तो गये परन्तु उनके हृदय में दो शक्तियाँ भयानक युद्ध करने लगीं। शक्तियाँ थीं मित्र के प्रति कर्तव्य और दुर्ग के अधिकार का लालच। कर्तव्य कहता था कि यदि संसार में एक मित्र मिल जाय तो उसके लिए तन-मन-धन को कुछ भी न समझना चाहिये। लालच कहती थी कि यह ठीक है परन्तु जब मित्र सच्चा मित्र हो।

कर्तव्य—देखो मित्र सच्चा हो है। यदि ऐसा न होता तो वह अस्वस्थ होते हुए भी मित्रका भला करने यहाँ क्यों आता।

लालच—अवश्य ही इसमें कोई उसका स्वार्थ रहा होगा। संसार में कोई भी व्यक्ति स्वार्थ के बिना कोई कर्म नहीं करता। मैं खूब समझ गया। इसने सोचा होगा कि यदि ग़ाज़ीख़ाँ अधिकार पा गया तो मेरी-उसकी शत्रुता होने के कारण मुझे नगर में रहने दे वा नहीं या क्रोध में आकर मरवा ही डाले तो भी कोई आश्चर्य नहीं। इस लिए यह यहाँ आया कि यदि मैं जीत गया और दुर्ग पर अधिकार पा गया तो अवश्य ही इसका ध्यान रक्खूँगा।

कर्तव्य—छी-छी! ऐसे मनुष्य के लिए ये बातें कहना सर्वथा अनुचित है। मैं जमशेद को बहुत छोटेपन से जानता हूँ। उसने कई स्थानों पर अपने जीवन को तुच्छ समझकर

मेरी रक्षा की है। स्वार्थी मनुष्य कभी अपनी जान पर नहीं खेल सकता।

लालच—अच्छा, यह मान भी लिया कि वह सच्चा मित्र है। परन्तु मीरख़ाँ से भी तो अधिक नहीं पटती। यदि मीरख़ाँ किसी प्रकार दुर्ग जीतने में कृतकार्य हुए तो क्या वे तुम्हें ग़ाज़ीख़ाँ के साथ ही साथ न मरवा डालेंगे? क्या वे अपने पथ में कभी काँटा रखना पसन्द करेंगे? काँटा भी कैसा जो किसी समय झाड़ी के स्वरूप में बढ़कर वस्त्र फाड़ डाले। फिर मित्र किसका रहेगा? जब आप ही न रहोगे तो मित्र लेकर क्या करोगे?

कर्तव्य—यह स्वार्थी लोगों कीसी बातें हैं। यदि सच्चे मित्र के लिए प्राण भी जायँ तो कोई चिन्ता की बात नहीं।

लालच—मीरख़ाँ यदि तुम्हें ही मार डालना विचारेंगे तो क्या तुम्हारे मित्रों और सम्बन्धियों को क्या छोड़ देंगे? रुकने से अपने जान के साथ ही साथ मित्र की भी जान जायगी। क्या यह तुम चुपचाप सह लोगे?

जैसे बुरे मनुष्यों में सज्जन पुरुष नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार तुराबख़ाँ के हृदय में कर्तव्य लालच के सामने न ठहर सका। लालच ने विजय पाई। परन्तु कर्तव्य ने फिर भी एक बार अन्तिम आपत्ति उपस्थित की—

कर्तव्य—इस समय जमशेद की अवस्था कहीं जाने लायक़ भी तो नहीं है; जाओगे कैसे?

लालच—यहीं पड़े पड़े क्या कर लोगे। मित्र से भी हाथ धो बैठोगे और राज्य तो गया ही समझो।

कर्तव्य इससे अधिक न ठहर सका। तुराबख़ाँ ने

जाना ही निश्चय कर लिया। जमशेदख़ाँ को एक गाड़ी में आराम से लिटाया गया। वे उस समय ज्वर के कारण संज्ञाहीन हो रहे थे। सब लोग उनके साथ चल दिये।

रात्रि के समय मीरख़ाँ को अपने पास तुराबख़ाँ को देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने जमशेद की हालत पूछी। उत्तर में तुराबख़ाँ ने कहा कि वहाँ जमशेद की अवस्था अधिक बिगड़ती देखकर मैंने उसे अपने साथ ही ले आना यथेष्ट समझा। मीरख़ाँ ने पास ही की बस्ती से वैद्य बुलाया और जमशेदख़ाँ को दिखाने ले गये। वैद्य ने नाड़ी देखी और फिर बड़े गम्भीर भाव से बोला—यदि आज की रात खिच जाय तो कुछ आशा हो सकती है। अन्यथा रोग असाध्य हो गया है। अस्वस्थ-अवस्था में अधिक परिश्रम से यह दशा हुई है। मैं ओषधि देता हूँ; परन्तु कल से पहले कुछ भी नहीं कह सकता।

वैद्य ओषधि देकर चले गये परन्तु तुराबख़ाँ बड़ी बेचैनी के साथ उस शिविर में टहलने लगे। उनका हृदय आत्म-ग्लानि से भरा हुआ था। वे अपनेआपको अपने मन में बहुत बुरा-भला कहने लगे। अपनी स्वार्थपरता पर उन्हें आप ही घृणा होने लगी। वैद्य के शब्द—"अस्वस्थ-अवस्था में अधिक परिश्रम से यह दशा हुई है"—बराबर उनके मस्तक में चक्कर लगा रहे थे। वे कहने लगे कि मैंने इसे व्यर्थ ही लोभ के वश में हो ज्वर की अवस्था में ही यात्रा कराई। यदि यह मर गया तो मुझे इसकी हत्या के पाप का भागी बनना पड़ेगा। ऐसा मित्र मिलना कठिन है। देखिये इस दुखिया को कल देखना नसीब होता है या नहीं।

रात गुज़रती जाती थी। उस शिविर में तुराबख़ाँ रोगी

की शय्या के पास बैठे जग रहे थे। पास ही के, शिविर से इनके भाई मीरख़ाँ के ख़र्राटों का शब्द उनके प्रगाढ़ निद्रा में सोने का परिचय दे रहा था। पड़ावों में सन्नाटा छाया हुआ था। केवल तुराबख़ाँ और चौकीदार ही उस समय जाग्रत् थे। जमशेदख़ाँ ज्वर के तीव्र होने के कारण आप ही आप प्रलाप कर रहे थे। तुराबख़ाँ पास बैठे उनके उस प्रलाप को दुखित चित्त से सुन रहे थे।

थोड़ी देर चुप रहकर जमशेदख़ाँ फिर बोलने लगे— अरे अरे, मुझे छोड़ दो, मेरे दोस्त (मित्र) पर मुसीबत (विपत्ति) का पहाड़ टूट रहा है। मुझे उसकी मदद (सहायता) को जाने दो। अरे अरे, वह देखो ग़ाज़ीख़ाँ फ़ौज (सेना) लिये आता है। तुराबख़ाँ, भागो; देखो, अरे बचो। या अल्लाह, सामने से हटते ही नहीं। सँभलो तुराब वह देखो ग़ाज़ीख़ाँ, तुम पर हमला (आक्रमण) कर रहा है। अरे बचो। ठहर तो वे शैतान जब तक जमशेद ज़िन्दा (जीवित) है तू तुराब का बाल तो बाँका कर ही नहीं सकता।

यह कहते कहते जमशेद उन्मत्त होकर भागने की चेष्टा करने लगे। तुराबख़ाँ ने बड़ी कठिनता से उन्हें पकड़कर फिर शय्या पर लिटा दिया। शरीर पर हाथ लगने से ज्ञात हुआ कि ज्वर घट रहा है। यह बड़े ही शंकित चित्त से रोगी की ओर देखने लगे। ज्वर उतर रहा था। रोगी को नींदसी आती प्रतीत होने लगी। अङ्ग शिथिल होने लगे। तुराबख़ाँ सोचने लगे—क्या यही इसकी अन्तिम नींद है। धीरे धीरे समय व्यतीत हो गया। तुराबख़ाँ उसी प्रकार रोगी को देखते रहे। पूर्व-दिशा में कुछ कुछ लाली दिखाई

देने लगी।' लश्कर से प्रातःकाल की आज़ान का शब्द सुनाई दिया। तुराबख़ाँ ने देखा रोगी सो रहा है। उनके मुँह से निकला—खुदाया, तेरा शुक्र। फिर वे नमाज़ पढ़ने चले गये।

दिन चढ़ गया। लश्कर में चारों ओर हलचल मच गई। वैद्य ने आकर रोगी को देखा और बोला—अब कोई डर नहीं है। ज्वर पच गया अब दुर्बलता रह गई है वह भी धीरे धीरे चली जायगी। तुराबख़ाँ ने प्रसन्न होकर वैद्य को अनेक पुरस्कार दिये। हकीम चला गया। इधर सबको कूच की आज्ञा मिली। सब लोग दुर्ग की ओर चलने लगे।

पुरन्धर का दृढ़ दुर्ग जिस पहाड़ी के ऊपर बना हुआ है उस पर चढ़ने की राह बड़ी ही विकट है। कोई भी मनुष्य दुर्ग-रक्षक की दृष्टि बचाकर पहाड़ी के ऊपर नहीं पहुँच सकता। तुराबख़ाँ और मीरख़ाँ की सेना ने पहाड़ी के नीचे ही पड़ाव डाला। फिर दोनों भाई ऊपर जाने की राह सोचने लगे। सलाह करने के लिए ये दोनों भाई जमशेदख़ाँ के शिविर में गये। जमशेदख़ाँ अभी पूर्णरूप से स्वस्थ नहीं हुए थे इस लिए तुराबख़ाँ उन्हें अधिक घूमने-फिरने नहीं देते थे। इस समय भी उनका कष्ट बचाने के लिए ही वे उनके शिविर में सलाह करने गये। जमशेदख़ाँ का शिविर दुर्ग के ठीक सामने पड़ता था। दुर्ग यहाँ से अच्छी प्रकार दिखाई देता था। इन दोनों को आते देख जमशेदख़ाँ उठ खड़े हुए। फिर तीनों व्यक्ति मसनद पर बैठकर इस प्रकार वार्तालाप करने लगे—

तुराबख़ाँ—भाई जमशेद, हम इस वक़्त (समय) तुम्हीं के पास

इस लिए आये हैं कि सलाह करके क़िले (दुर्ग) पर चढ़कर धावा मारने की तरकीब सोच लें। तुम और भाई मीरख़ाँ भी इस बात को अच्छी तरह जानते हो कि बिना दुश्मन (शत्रु) के सामने पड़े पहाड़ी पर चढ़ना दुशवार (कठिन) है और सामने होकर अगर चढ़ने का इरादा किया जाय तो भला दुश्मन हमें चढ़ने ही क्यों देंगे। अब बोलो, क्या करना चाहिये।

मीरख़ाँ—हाँ भाई, सोच लो। देखो भला हमारे पास फ़ौज ही कितनीसी है और ख़ुदा न ख़्वास्ता (ईश्वर न करे) उसमें से कुछ मर गये तो फिर तो फ़तह (विजय) की उम्मीद (आशा) ही छोड़ देनी पड़ेगी। मेरी राय तो यह है कि शिवाजी मरहठा से मदद माँगी जाय। वे कुछ लालच देने से राज़ी हो जायँगे और अपनी फ़तह हो जायगी। क्यों, क्या सोच रहे हो ?

जमशेदख़ाँ—भाई साहबान, मेरी राय (सम्मति) शिवाजी से तो मदद माँगने की क़तई नहीं है। ख़ुदा न ख़्वास्ता उसकी नियत बिगड़ जाय तो फिर लेने के देने पड़ जायँगे। घरेलू झगड़ों में बाहर के आदमी को दाख़िल करना मैं तो सरासर नादानी समझता हूँ। कहीं बन्दर और रोटीवाला मज़मून न हो जाय। नहीं भाई साहब, इस राय को तो जाने ही दीजिये। अब यही सवाल रह गया कि दुश्मन पर किस तरह (प्रकार) हमला (आक्रमण) किया जाय। ऐसी तरकीब हो जिसमें साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे। अपना नुक़सान (हानि) भी न हो और दुश्मन भी ज़ेर (शासित) हो जाय। आपको मालूम है कि पहाड़ी पर पूरब की जानिब एक बरसाती नदी है। बरसात के अलावा

(अतिरिक्त) वह हमेशा सूखी पड़ी रहती है। अगर उधर से रात के वक़्त एक एक सिपाही चुपचाप चढ़े तो किले तक वह आसानी से पहुँच सकता है। वहाँ इकट्ठे होकर एकदम क़िले पर धावा कर देने से ही काम ठीक हो जायगा। क्यों मेरी राय पसन्द है न?

तुराबख़ाँ—भाई, मैं बज़ात ख़ुद तुम्हारी राय से बिलकुल ही मुत्तफ़िक़ (सहमत) हूँ। भाई मीरख़ाँ आपकी क्या राय है?

मीरख़ाँ—भाई, कोशिश कर देखो। मगर मेरी तो यही राय है कि बिना मरहठों की मदद के हम लोग क़िला सर (विजय) नहीं कर सकते। ताहम कोशिश (प्रयत्न) करने में क्या हर्ज (हानि) है। अगर बिना मदद के क़िला सर हो जाय तो क्या कहना। अलहमदुलिल्लाह!

मीरख़ाँ ने अभी यह बात समाप्त ही की थी कि एक बाण सनसनाता हुआ उनके सामने शिविर में आ गिरा। इन्होंने उसे उठा लिया। उसके साथ एक पत्र बँधा था। उसे खोला तो उसमें यह लिखा था—

लाइलाहइल्लिल्लाह

पुरंधर-सरकार

मुसम्मी मीरख़ाँ और तुराबख़ाँ तुम्हें आगाह किया जाता है कि मिनजानिब के हुज़ूर में इत्तला हुई है कि तुम दोनों मिनजानिब के ख़िलाफ़ बग़ावत करने पर आमादा हो और सामाने-जंग मुहैया कर रहे हो। तुम्हें हुक्म दिया जाता है कि तुम दोनों अपने क़ुसूर बख़्शवाने मिनजानिब के

हुज़ूर में कल फ़जर ही हाज़िर हो। वरना तुम बाग़ी क़रार दिये जाओगे और सज़ाये मौत के सज़ावार होगे।

दस्तख़त

आँ हुज़ूर आली जनाब अमीर-उल-उमरा नवाब गाज़ीखाँ साहब बहादुर वालिये पुरन्धर।*

तीनों इस पत्र को पढ़कर चुप रहे। फिर मीरख़ाँ ने उसे अपने पैर के नीचे मसल डाला। रात अधिक चली गई थी दोनों भाई उठकर-अपने अपने विश्रामस्थान पर सोने चले गये।

आकाश में पूर्व की ओर कुछ कुछ लाली दिखाई देने लगा। चिड़ियाँ अपना बसेरा छोड़ इधर-उधर चहकने लगीं। मुर्ग़ ने बाँग देना आरम्भ कर दिया। उधर पुरन्धर के दुर्ग से आज़ान की ध्वनि आने लगा। मीरखाँ उठ बैठे और द्वार-रक्षक को तुराबखाँ को बुलाने भेजा और आप नमाज़ पढ़ने लगे। सैनिक लौट आया और इनके निपटने का आसरा देखता हुआ हाथ बाँधकर खड़ा हो गया। जब मीरखाँ नमाज़ पढ़ चुके तब उसकी ओर देखकर बोले—

---

* ईश्वर तू ही सत्य है

पुरन्धर-सरकार

मीरखाँ और तुराबख़ाँ नामी व्यक्तियो, तुम्हें सूचना दी जाती है कि हमें समाचार मिला है कि तुम दोनों हमारे विरुद्ध विद्रोह करना चाहते हो और अपनी आशा को चरितार्थ करने के लिए सेना एकत्रित कर रहे हो। तुम्हें आज्ञा दी जाती है कि तुम दोनों भाई कल प्रातःकाल ही अपने अपराध क्षमा करवाने हमारे सामने उपस्थित हो नहीं तो तुम विद्रोही माने जाओगे और प्राण-दंड के अधिकारी होगे।

हस्ताक्षर

श्रीमान् राजाधिराज नवाब गाजीखाँ साहब बहादुर पुरन्धर-नरेश।

क्यों, तुराबखाँ नहीं आये ? तू वहाँ हो आया क्या ? अभी सोकर नहीं उठे हैं ? बात क्या है, तू खाली क्यों लौट आया ?

सैनिक—खुदावन्द, बन्दा (दास) हुजूर के हुक्म के बमूजिब (अनुसार) छोटे सरकार को बुलाने गया था मगर हुजूर वे खेमे में नहीं मिले। पहरेदार से पूछने पर मालूम हुआ कि वे क़िले की जानिब (ओर) गये हैं।

मीरखाँ—क्या कहा, क़िले की जानिब गये हैं ! क्या अकेले ही ?

सैनिक—खुदावन्द !

मीरखाँ—(स्वगत) तुराब, मैं तुम्हें इतना बुजदिल (कायर) नहीं समझता था। ग़ाज़ीखाँ के परवाने (आज्ञा-पत्र) ने तुम पर रोब गाँठ दिया वरना ऐसी हरकत (कार्य) न करते। खैर कुछ परवा नहीं है अकेला मीरखाँ तुम दोनों के लिए काफ़ी है फ़क़त (केवल) शिवाजी की मदद की ज़रूरत (आवश्यकता) है। (प्रकट) सैनिक, जाओ मुज़फ्फ़रखाँ को भेज दो और देखो अगर जमशेदखाँ खेमे में हों तो उन्हें भी आने को कह देना।

पहरेदार सलाम करके चला गया और यह सोचने लगे—बड़ा धोखा खाया। तुराब को पहले ही निपटा देना चाहिये था। ख़ैर, अब अफ़सोस करने से क्या हासिल, अब तो हाथ से निकल गया। मगर जमशेद पर मुझे निगाह रखनी होगी कहीं वह शैतान कुछ फ़ितना न बरपा करे। साँप का भाई साँप ही होता है।

यह इसी सोच में थे कि मुज़फ्फ़रखाँ ने प्रवेश किया और अदब से खड़े हो गये। यह उनकी ओर लक्ष्य करके

कहने लगे—देखो मुज़फ्फर, तुम हमेशा मेरे बहादुर (वीर) और जानिसार सरदार रहे हो। मैं तुम्हें जितना चाहता हूँ उतना अपने भाई को भी नहीं चाहता। मैं तुम्हें इस जंग के लिए, इसी के लिए क्या हमेशा के लिए, खुदा तुम्हें कामयाबी दे, आज से अपनी फौज का सिपहसालार (सेनापति) मुन्तखिब करता हूँ। मगर तुम्हें इस वक्त एक अहम काम पर भेजता हूँ। उम्मीद है कि काम पूरा करके शाम तक मुझे जवाब ला दोगे। देखो, तुम अभी रायगढ़ चले जाओ और शिवाजी से हमारी मदद के लिए कहो। कुछ लालच भी देकर उसे हमारी मदद के लिए लिवा लाओ समझ गये न? जाओ, जल्द ही काम करो वक्त कम है और काम बहुत करना है।

मुज़फ्फरखाँ ने सलाम करके तुरन्त ही एक द्रुतगामी अश्व ले रायगढ़ की ओर प्रस्थान किया। इतने में सिपाही ने आकर सूचना दी कि जमशेदखाँ अभी थोड़ी देर हुए कहीं बाहर टहलने को निकल गये हैं। मीरखाँ सुनकर बेचैन हो गये और उसी समय कपड़े पहन खड्ग हाथ में ले बाहर निकले और पूर्व की ओर जहाँ उस पहाड़ी नदी के होने का हाल जमशेदखाँ से सुन चुके थे चल दिये। अभी यह कुछ ही दूर गये होंगे कि इन्हें एक ओर से एक चीख सुनाई दी। यह दौड़कर घटनास्थल पर पहुँच गये।

सूर्य भगवान् आकाश में ऊँचे चढ़ आये थे। उनकी किरणों से पुरंधर पहाड़ी के पत्थर तपकर रक्त-वर्ण प्रतीत होते थे। मीरखाँ ने देखा कि एक ओर तुराबखाँ बैठे हैं। उनके घुटने पर सिर रक्खे जमशेदखाँ लेटे हैं। सामने एक सिपाही मरा पड़ा है। यह ठिठककर खड़े हो गये फिर थोड़ी

देर के बाद बोले—भाई तुराबखाँ, मामला क्या है। जमशेद को क्या हुआ? यह सिपाही कौन है?

तुराबखाँ ने इनकी ओर देखा फिर बोले—भाई, क्या बताऊँ रात मुझे अच्छी तरह नींद नहीं आई थी। रातभर मैं क़िला सर करने की तरकीब सोचता रहा। सुबह मैं इस दरिया की घाटी की हालत देखने इधर चला आया। यहाँ आकर मैं खड़ा हो गया और फ़ौज के चढ़ाने की तरकीब सोचने लगा। एकाएक जमशेदखाँ दौड़े हुए आए और मेरे पीछे खड़ा हो गये। मैंने जो पीछे फिरकर देखा तो मालूम हुआ कि इस सिपाही ने मुझ पर छिपकर वार किया था। भाई जमशेद ने कहीं इसे देख लिया और दौड़कर वह वार अपने ऊपर ले लिया था। यह चोट खाकर गिर पड़े। सिपाही ने फिर मेरे ऊपर वार किया। मगर मैं तैयार हो गया था, मैंने उसे मार गिराया। मगर अफ़सोस यह कि जमशेदखाँ को चोट कड़ी बैठी है इनका बचना मुहाल है।

इसी समय जमशेदखाँ ने आँखें खोलीं और तुराबखाँ की ओर देखकर धीरे धीरे बोलने लगे—भाई..............

......तुराब...........खाँ...........मैं... :......अ.........
व........च.........ला.........म................ग ....
र......या......द......र......ब......ना.........बा.........

इससे अधिक वह कुछ भी न बोल सके परन्तु मैदान की ओर हाथ उठाकर हिलाया फ़िर आँखें मूँद लीं। उनका प्राण-पखेरू उड़ गया। तुराबखाँ के आँसू निकल आये। फिर दोनों भाई मिलकर उनका शव पड़ाव पर ले आये। विधि-पूर्वक उसका मृत-संस्कार कर दिया। परन्तु तुराबखाँ उनके हाथ हिलाने का अर्थ हज़ार चेष्टा करने पर भी न सोच सके।

सूर्य भगवान् की सवारी धीरे धीरे अस्ताचल की ओर जाने लगी। चारों ओर अन्धकार फैलने लगा। एक शिविर के अन्दर मीरखाँ और तुराबखाँ बैठे हैं। मीरखाँ बार बार उत्सुक दृष्टि से द्वार की ओर देख रहे हैं। कभी कभी कान लगाकर सुनने लगते हैं फिर डूबते हुए सूर्य की ओर देखकर वे एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हैं। तुराबखाँ मौन हुए एक ओर बैठे हैं। कभी कभी आकाश की ओर ध्यान से देखने लगते हैं फिर अपने विचारों में निमग्न हो जाते हैं।

सूर्य भगवान् अब पूर्णरूप से अन्तर्द्धान हो गये। अब पश्चिम ओर लालिमा भी बिलकुल ही नहीं दिखाई देती। मीरखाँ इस समय अत्यन्त ही व्याकुल हो उठे। वे उठकर इधर-उधर टहलने लगे। इसी समय दूर से एक घोड़े की टापों का शब्द सुनाई दिया। मीरखाँ और भी व्याकुल हो उठे और द्वार खोलकर शिविर के बाहर निकल आये। घोड़ा पास आ गया। मुज़फ्फरखाँ ने घोड़े से उतरकर उन्हें सलाम किया और खड़े हो गये। मीरखाँ अब और सन्तोष न कर सके। उतावली से पूछने लगे। क्यों, क्या ख़बर लाये मुजफ्फ़र? काम हुआ या यों ही खाली हाथ लौटना पड़ा। जल्द बोलो, चुप क्यों खड़े हो?

मुज़फ्फ़रखाँ—(एक और सलाम करने के पश्चात्) हुजूर, अगर खेमे के अन्दर चलकर मेरी लाई हुई ख़बर सुनते तो बेहतर होता। ख़बर तख़लिये (एकान्त) के सुनने लायक़ ही है।

मीरखाँ मुज़फ्फ़रखाँ का हाथ पकड़कर खींचते हुए शिविर में घुस गये और फिर बोले—कहो, क्या ख़बर लाये?

मुज़फ्फ़रख़ाँ—हुजूर, मैं खुदावन्द के हुक्म के मुताबिक (अनुसार) रायगढ़ पहुँचा मगर वहाँ शिवाजी से मुलाक़ात

(साक्षात्) न हो सकी। वे उस समय टोरन के क़िले में गये हुए थे। गुलाम घोड़ा बढ़ाकर वहीं पहुँचा। वहाँ शिवाजी से मिला। उन्होंने पहले तो मदद देने से इनकार किया मगर हुजूर जब गुलाम ने कहा कि पुरंधर की रिआया (प्रजा) ग़ाज़ीखाँ के जोरोसितम (अन्याय) से तंग आ गई है और हुजूर के पास रिहाई की दरख्वास्त कर चुकी है इस लिए क़िला सर करना कोई मुश्किल गुज़ार काम न होगा। और फिर हजूर मैंने उन्हें कुछ लालच भी दिया; तब हुजूर, वह तैयार हो गये और अपने बहादुर सरदार आबाजी सोनीदेव की जेरमातहती पाँच हज़ार सिपाही (सेना) हमारी मदद को भेजी है। मैं मरहठा फ़ौज का पहाड़ी के पूरब तरफ़ डेरा डलवा आया हूँ और खुदावन्द से इत्तला करने आया हूँ।

मीरखाँ—शाबाश! अब हम जरूर कामयाब होंगे। जाओ देखो अपने आदमियों को रात के वक्त एक एक करके पहाड़ी पर चढ़ने का हुक्म दे दो और मरहठा फ़ौज को भी यही ताकीद कर देना। जाओ, थोड़ी देर आराम कर लो, फिर लड़ाई के लिए तैयार हो जाओ।

तुराबखाँ जब मुज़फ्फ़रखाँ शिविर में आये थे उस समय भी अपनी धुन में ही मस्त बैठे थे। उन्होंने मीरखाँ की ओर उनकी बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। परन्तु जब मीरखाँ ने मरहठा सेना का नाम लिया तो वे चौंके और मुज़फ्फ़रखाँ के चले जाने के पश्चात् मीरखाँ से पूछने लगे—क्यों भाई, यह मरहठा फ़ौज का क्या ज़िक्र है। उससे हमें क्या सरोकार?

मीरखाँ—भाई तुराब, तुम बहुतसी बातें नहीं जानते हो।

मैंने और किसी तरह फ़तह न होते और इधर अपनी जान का भी अंदेशा देख शिवाजी के पास से मदद् माँगी। उनकी फ़ौज आ गई है। अब आज रात को ही क़िला अपने हाथ लगेगा।

तुराबखाँ—भाई मीरखाँ! तुमने मरहठा फ़ौज को बुलाकर अच्छा नहीं किया। जमशेद ग़लत नहीं कहता था, मगर अब क्या हो सकता है क़हर दरवेश बर जान दरवेश!

अँधेरी रात है। आंकाश मेघाच्छन्न है। पुरंधर की पहाड़ी पर धीरे धीरे मीरखाँ की सेना के साथ ही साथ मरहठा सेना भी चढ़ रही है। कभी कभी बिजली चमक जाती है उसी के प्रकाश में राह का अनुमान करके सब लोग टटोल टटोलकर चढ़ रहे हैं। इस बात का सबको डर है कि कहीं कोई पत्थर न लुढ़क पड़े जिसके शब्द से शत्रु आगमन से सूचित होकर सतर्क हो जायँ! माधव आज आबाजी सोनी-देव के पार्श्वचर हैं। बड़े ज़ोर की हवा बहने लगी। पानी बरसा ही चाहता था। इसी समय "हरहर महादेव, भगवान् एकलिंग की जय, अल्लाह" इत्यादि शब्दों से वायु भर गई। सबने दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। दुर्ग की सेना अचेत थी घबरा गई। किसी भाँति युद्ध आरम्भ किया परन्तु एक तो इस समय ये लोग युद्ध के लिए प्रस्तुत नहीं थे, दूसरे अँधेरे के कारण यह नहीं ज्ञात होता था कि शत्रु की संख्या कितनी है। इसी कारण सेना के हाथ-पैर फूल गये। इधर मरहठा सेना के वीरों ने दुर्ग की दीवार फाँद फाँदकर दुर्ग में प्रवेश करना आरम्भ कर दिया। आबाजी सोनीदेव एक कुलाँच मारकर दीवार पर चढ़ गये। उस समय वहाँ कोई भी सैनिक नहीं था। सबके सब दूसरे स्थान पर सेना

का प्रवाह रोक रहे थे। ग़ाज़ीखाँ भी गोलमाल सुनकर दीवार पर आ गये। आबाजी को उन्होंने कूदकर चढ़ते देखा। वे चुपके से वहाँ पहुँच गये और चाहते थे कि एक हाथ में ही उनका काम तमाम कर दें। आक्रमण करने को हाथ उठाया परन्तु हाथ नीचे नहीं आ सका। एक बलिष्ठकाय पुरुष ने उनकी कलाई पकड़कर ऐसा झटका दिया कि खड्ग उनके हाथ से छूटकर झनझनाती हुई दूर जा गिरी।

इतने में फिर बिजली चमकी। उसकी चमक में आबाजी ने माधव को पहचान लिया और बोले कि आज तुमने ही मेरी प्राण-रक्षा की। इधर माधव का ध्यान बँटा देख ग़ाज़ीखाँ ने अपना हाथ छुड़ा लिया और अपनी जान बचाकर भाग खड़े हुए। इतने में किसी ने दुर्ग का द्वार खोल दिया। सारी सेना अंदर आने लगी। दुर्ग की सेना ने अस्त्र डाल दिये। दुर्ग अधिकार में आ गया।

प्रातःकाल दुर्ग में दरबार किया गया। माधव को हवलदार का पद मिला। उनकी कीर्त्ति दूर दूर तक फैल गई। जिधर देखिये उधर माधव हवलदार की ही वीर-गाथा सुनाई देती थी। आबाजी ने महाराज शिवाजी की आज्ञा मीरखाँ को सुनाई। आज्ञा सुनकर वह सन्न से रह गये परन्तु मानने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते थे। दोनों भाइयों को उस आज्ञा के अनुसार दुर्ग का क़िलेदार नियत किया गया और उन्हें समय पड़ने पर मदद का वचन दिया गया। उन्हें मरहठा सेना में उच्च पद भी प्रदान किये गये! इसके बदले में दोनों भाइयों ने महाराज शिवाजी का आधिपत्य स्वीकार किया और साथ ही सर्वदा सहायता देने का वचन तथा कुछ धन राज्य-कर के स्वरूप में देना स्वीकार किया।

आज तुराबखाँ जमशेद्खाँ के हाथ हिलाने का अर्थ समझे। उन्हें ज्ञात हो गया कि जमशेद्खाँ का अर्थ मरहठों को सहायता के लिए न बुलाने के अतिरिक्त और कुछ भी न था। धन्य जमशेद्खाँ तुम स्वर्ग जाते समय भी मित्र के हित-चिन्तन ही में लगे रहे।

सारे दुर्ग में खोजने पर भी ग़ाज़ीखाँ का पता न लगा। वे कुछ साथियों को लेकर भाग गये। किसी ने उस ओर अधिक ध्यान भी न दिया। सब लोग विजयोत्सव मनाने में मस्त हो गये।

पाठक, इन्हें विजयोत्सव मनाने दीजिये। आइये, हम लोग ग़ाज़ीखाँ के साथ चलकर देखें कि वे कहाँ जाते हैं और क्या करते हैं।

छठा परिच्छेद

बिजली की चमक में ग़ाज़ीखाँ ने माधव को देखा। फिर आबाजी को उनका नाम लेकर पुकारते सुना। माधव आबाजी की ओर देखने लगे, ग़ाज़ीखाँ की ओर से उनकी दृष्टि हट गई। ग़ाज़ीखाँ समय अनुकूल देख भाग निकले। वे दुर्ग की दीवार से नीचे कूदकर महल की ओर चले। सारे दुर्ग में उस समय भगदड़ पड़ रही थी। इसी समय उन्हें "भगवान् एकलिंग की जय।" हरहर महादेव" इत्यादि शब्द सुनाई पड़े। यह वह समय था जब किसी ने दुर्ग का द्वार खोल दिया था और मरहठा सेना एकाएक जय-शब्द करती हुई दुर्ग में प्रवेश कर रही थी। इन सब शब्दों को सुनते हुए

गाज़ीखाँ दुर्ग के पीछे की ओर पहुँचे। वहाँ इन्हें अपने दो सरदार और मिले। उनसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि दुर्ग छिन गया और सेना ने अस्त्र डाल दी। इसी समय किसी की बड़े ज़ोर से आवाज़ सुनाई दी—"गाज़ीखाँ जहाँ भी हो उसे ढूँढ़कर लाओ उसको उसकी गुस्ताखी की सज़ा ग़ौर करके दी जायगी।" आवाज़ बहुत दूर न थी, उसके साथ ही बहुतसे मनुष्यों के इधर-उधर दौड़ने के शब्द सुनाई दिये। गाज़ीखाँ ने पहचाना, आवाज़ मीरखाँ की थी। वे चौंक उठे। ढूँढ़ने-वाले पास आते-जाते थे। सरदारों ने भी यह दिल दहला देनेवाली आज्ञा सुनी। उन्होंने गाज़ीखाँ से कहा कि हुज़ूर, फ़ौरन् भग जायँ। यदि शत्रु ने आपको पकड़ पाया तो आपके लिए अच्छा न होगा। गाज़ीखाँ उस समय बड़े शान्त स्वर से बोले—मौत से क्या भागना। यह तो एक दिन सबको ही आनी है। मगर दुश्मन से क़िला फिर छीनना होगा इससे जान बचाना ही इस समय ठीक जान पड़ता है। लेकिन मुश्किल तो यह है कि यहाँ कोई सीढ़ी या रस्सी भी नहीं है जो दीवार फाँदने में मदद देती!

सरदार—आप किसी तरह यहाँ छिपिये। हम जल्द ही रस्सी या कोई और चीज़ लेकर आते हैं।

दोनों सरदार दो ओर चले गये। गाज़ीखाँ किसी तरह अपनेआपको छिपाने के लिए दीवार के साये में खड़े हो गये। इस समय दुर्ग में चारों ओर इनकी ढूढ़ हो रही थी। गाज़ीखाँ के पास कोई भी शस्त्र न था। खड्ग लड़ाई में गिर गई थी। इस समय वह यही सोच रहे थे कि यदि कोई सिपाहियों का झुंड इन्हें ढूँढ़ता हुआ यहाँ आ गया तो किस प्रकार अपनी रक्षा कर सकेंगे। यही होगा कि कायरों

की भाँति पकड़े जायँगे, सरदारों के आने में ज्यों त्यों देर होती जाती थी यह उतने ही निराश होते जाते थे। इसी समय किसी ने इनके कन्धे पर हाथ रक्खा। यह चौंक पड़े!

वायु के चपेटों ने मेघों को छिन्न-भिन्न कर दिया था। वे छोटे छोटे खंड होकर आकाश में इधर-उधर दौड़ते फिर रहे थे। चन्द्रदेव समय देख अपने प्रकाश से पृथ्वी को प्रकाशित करने लगे थे। उनकी स्वच्छ निर्मल चाँदनी में हर-एक वस्तु साफ़ दिखाई देने लगी थी। ग़ाज़ीखाँ ने जो मुड़-कर देखा तो तुराबखाँ को अपने पीछे खड़ा पाया। वे एकदम गम्भीर हो गये और कहने लगे अख्खाह, आप हैं! आइये। बहुत दिनों से हुज़ूर से मुलाक़ात (साक्षात्) नहीं हुई थी। आज आप मुझे मिल गये, मेरी इज़्ज़त-अफ़ज़ाई (सम्मान-वृद्धि) हुई। मैं इस तौक़ीर (सम्मान) का तहेदिल से शुक्रिया अदा करता हूँ। बस, मैं और कुछ नहीं चाहता सिर्फ़ आपसे दो दो बातें करना चाहता हूँ। इन बातों को आपसे कहने के लिए मेरा पेट फूला जा रहा था। मैं अभी सुन चुका हूँ कि मेरे जुर्म पर ग़ौर किया जायगा। यह सब फ़जूल (व्यर्थ) इतना झंझट क्यों किया जा रहा है। मैं तो विना इंसाफ़ या फ़ैसला कराये भी सज़ा भुगतने को तैयार हूँ। क्यों, क्या सोच रहे हो? क्या तुम कह सकते हो कि यह सब क्या हो रहा है। है न अजीब समाँ! क्यों? पुराने ज़माने में एक बादशाह था और उसकी एक बेगम थी! बादशाह ख़ानदान (कुटुम्ब) का सबसे बड़ा आदमी होता था, बेगम थी बाद-शाहत। इत्तिफ़ाक़ से बादशाह मर गया। बेगम दूसरे हक़-दार बादशाह की हुई। तुम लोग यह न देख सके और बेगम को छीनने के लिए दौड़ पड़े। बेगम छीन ली। उसकी लड़की

इंसाफ़ का नाम रक्खा बढ़ना यानी शूली। इस लड़की से शायद कल सुबह मेरी मुलाक़ात कराई जायगी। मैं उससे मिलकर ऐसा ही ख़ुश हूँगा जैसा तुमसे मिलकर हुआ हूँ। क्यों, क्या तुम मुझे इसी लिए नहीं पकड़ते हो? मुझे पकड़कर भी क्या तुम बादशाह हो सकते हो। नहीं, कभी नहीं। तुमने अभी तक असली बादशाह देखा ही नहीं। मेरी तरफ़ देखो, असली बादशाह मैं हूँ। क्यों, है न एक अजायब चीज़? ज़रूर है क्योंकि वह खुदा का ख़ौफ़ खाता है। हक़दार को उसके हक़ पर क़ाबिज़ देखना चाहता है। जो हमेशा अपने बुज़ुर्गों के हुक्म पर चलता है, पुराने क़वानीन (सिद्धान्तों) का पाबन्द है, इंसाफ़ करता है, अगर इंसाफ़ कहे तो वह तुम्हारा, अपने प्यारे भाई का, भी सर काटने में गुरेज़ (आगा-पीछा) न करे। ओ हो, आप दूर क्यों हटते जाते हैं। ज़रा पास आइये, मेरी तरफ़ नज़र उठाकर देखिये तो! मैं जानता हूँ कि कल फ़ज्र ही मेरा सर उड़ा दिया जायगा। कोई अफ़सोस की बात नहीं है। सभी को एक न एक दिन मरना होता है। मगर यह तो कहिये कि आपने घरेलू झगड़ों में काफ़िरों को—एक बाहर के आदमी—को क्यों शरीक़ किया। क्या यह सरासर ग़लती नहीं है? हम-तुम सब बचपन में जिस जगह पर खेले हैं, जहाँ बीसों बार मैंने तुम्हें अपनी गोद में लेकर रोते से चुप कराया है। उसी जगह को काफ़िरों के हाथ में दे देना कारे-दोज़ख़ी नहीं है? ताज्जुब (आश्चर्य) की बात है कि तुम भी उन्हीं बुज़ुर्गों की औलाद हो जिनकी मैं हूँ। तुम्हारी रगों में और मुझमें एक ही ख़ून गर्दिश (प्रवाह) कर रहा है। मगर मैंने किसी बाहरी आदमी को अपनी मदद के लिए नहीं बुलाया। मुझे

तुम्हारी इस मदद का पता लग गया था फिर भी मैंने किसी बाहरी आदमी को मदद के लिए नहीं बुलाया। अगर मैं चाहता तो बीजापुर के सुलतान, बादशाह औरङ्गज़ेब या इन्हीं मरहठों को तुमसे पहले ही मदद को बुला सकता था; मगर मैंने ऐसा नहीं किया। सिर्फ़ इसी लिए कि आपस के जंग में दूसरे को शामिल करना अपने मुँह का नेवाला दूसरे को दे देना है। जिस ख़ून ने मुझे इतना बहादुर और दूरन्देश बनाया उसी के होते हुए भी तुम इतने अंधे और दोज़खी कुत्ते हो गये। यह सब किसी का भी कुसूर नहीं है। यह अपनी अपनी सोहबत का असर है। आजकल के ज़माने में कोई भी यह नहीं कह सकता कि कौन क्या कर बैठे। तुमने अपने-आपको बिलकुल गधा बना डाला। वाह वाह, आपसे जवान आदमी पर कुरबान हो जाय जिसने अपने बाजुओं में ताक़त होते हुए भी अपने बुजुर्गों की कमाई बचाने के बदले खुद बुलाकर चोरों को दे दी। तुम दोनों ऐसे ही अंधे हो गये। हाँ, ! ख़ूब याद आया। मेरा मीरखाँ से सलाम कह देना।

ग़ाज़ीखाँ कुछ दम लेने के लिए ठहर गये फिर उसी प्रकार गम्भीर स्वर से कहने लगे—मैं साफ़ साफ़ कहता हूँ कि तुम दोनों की बातें सुनकर मैं बहुत ही नाराज़ हो गया था और तुम्हें हर तरहसे मारने की कोशिश कर रहा था। मैंने आज रात को ही कई गोली अपनेआप ही तुम लोगों को मारने के लिए चलाई। यह ज़रूर है कि भाई का भाई के साथ यह बर्ताव बहुत ही नाशायस्ता है। मगर मेरे ख्याल से लड़ाई में दुश्मन के हाथ से और किसी बर्ताव की उम्मीद करना सरासर नादानी और भोलापन है। भाई, हम और तुम में लड़ाई है। लड़ाई में हरएक चीज़ तलवार के घाट उतरती है। लड़ाई में

रहम का नाम नहीं है मगर उनका शुक्र कीजिये जिन्होंने मेरे हाथ से तलवार गिरा दी।

यहाँ ग़ाज़ीखाँ फिर रुक गये और हाथ ले जाकर खड्ग के होने का स्थान टटोलने लगे। फिर बोले—आप इसका जवाब शायद यही देंगे कि अगर मैंने वालिद के तख्त पर क़ब्ज़ा न किया होता तो यह सब झंझट कभी न होता, मैंने पुराने कायदों के मुआफ़िक़ कोई बुरा काम नहीं किया था। मैं तुम सबमें बड़ा था। लेकिन थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि मैंने ग़लती की तो यह तो बतलाइये कि क़ुसूरवार मैं था, मुल्क ने जिसमें हम-आप पैदा होकर बड़े हुए तो कोई क़ुसूर नहीं किया था? फिर किस वजह से उसे अजनबियों के पैरों से कुचलवाकर उन्हीं अजनबियों के हवाले करने की ठानी। हमारे किसी भी बुज़ुर्ग ने ऐसा गुनाह नहीं किया था। लेकिन आपको तो बुज़ुर्गों का ज़िक्र सुनाना बुज़ुर्गों को भी फ़ज़ूल तकलीफ़ देना है। आप अंधे हैं, अपने लिए दोज़ख़ का रास्ता साफ़ कर रहे हैं। सुनिये, जब आप बिलकुल शीरख्वार थे उस वक़्त मैं आपसे काफ़ी बड़ा था, और अब भी आपसे उतना ही बड़ा हूँ जितना उस वक़्त था। ज्यों ज्यों आप बड़े होते गये आप अपने बिगड़ने के सामान इकट्ठा करते गये। फिर यहाँ तक आप गिर गये कि मैंने और आपने एक दूसरे से मिलना और बोलना भी छोड़ दिया। हम दोनों अपने अपने रास्ते पर बे-रोक-टोक चले गये। मैंने ईमानदारी और इंसाफ को पसन्द किया। तुम दूसरी ही राह से चले। मालूम नहीं, इसका क्या हशर (परिणाम) हो। आपके जितने मशबिर हैं वे सब

हरामख़ोर और ख़ुशामदी कुत्ते हैं। खैर, मुझे इससे क्या ? आप लोगों को बग़ावत करना सिखाइये, पुराने क़वानीन तोड़ डालिये, मुल्क को उजड़वाने के लिए ग़ैरों के हवाले कर दीजिये, बुज़ुर्गों का नाम और उनके कारनामे मिटा दीजिए, नये बन जाइये, नई दुनिया बना लीजिये: मगर हमारी शान वैसी ही रहेगी। हमारा सर उसी रोब के साथ उठा रहेगा। बस, जो आपकी तबियत चाहे वह कीजिये, हमें आपसे कोई सरोकार नहीं। बुज़दिलो, तुम किसी भी मर्ज़ की दवा नहीं हो। लो, अब मुझे कुछ नहीं कहना है। मुझे पकड़कर ले चलो, मरवा डालो और शूली दिलवा दो। मैंने जो कुछ कहा है सच कहा है। क्योंकि मेरी हालत झूठ बोलने से और क्या बुरी हो सकती है। मुझे तो हर हालत में मरना ही है ?

तुराबख़ाँ ने कहा कि नहीं, तुमको अभी बहुत दिनों तक जीना है और तेज़ी से एक ओर को चले गये। ग़ाज़ीख़ाँ उनकी ओर देखते ही रह गये। इतने में दोनों सरदार रस्सी लेकर वहाँ आ गये। एक ने रस्सी फेंकी, दूसरा ग़ाज़ीख़ाँ को सहारा देता हुआ दुर्ग की दीवार पर चढ़ गया। फिर तीनों दुर्ग के बाहर की ओर उतर गये। ग़ाज़ीख़ाँ पुतली की तरह सब काम करते रहे। जब मैदान की ठंडी हवा लगी तो उन्हें ज्ञात हुआ कि दुर्ग के बाहर निकल आये हैं। उन्होंने सोचा कि मरहठों से दुर्ग को पददलित करने का बदला लेना और अपने सिद्धान्त पर अटल रहना होगा। फिर वह एक ओर चल दिये। मरहठों पर उन्हें एक प्रकार का क्रोध हो आया।

सप्तम परिच्छेद

पूर्व में सूर्यदेव का आगमन हो गया। चिड़ियाँ चह-चहाने लगीं। ग्रामीण लोग अपने खेतों की मेंड़ों पर खड़े दिन का काम आरम्भ करने को सोच रहे हैं। चारों ओर पीले पीले खेत दिखाई दे रहे हैं। एक ओर गाँव का पोखरा है। उसके किनारे ग्रामीण रमणियाँ पानी भर रही हैं और आपस में बातचीत भी करती जाती हैं। पोखरे के पास से ग्राम को राह जाती है। राह के किनारे ही एक वृक्ष के नीचे तीन पथिक विश्राम कर रहे हैं। पाठक, आप इन्हें पहचान गये होंगे। वे हमारे पूर्व-परिचित ग़ाज़ीखाँ और उनके साथी सरदार हैं। रातभर चलकर वे लोग इस ग्राम में पहुँचे हैं और पोखरे से जल पीकर अब वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे हैं। पोखरे पर की युवतियों की आपस की बातें इन्हें भली प्रकार सुनाई दे रही हैं। इसी समय कमर पर घड़ा रक्खे एक युवती वहाँ आई। ग़ाज़ीखाँ जो पोखरे की ओर ही मुँह किये बैठे थे उसे देखते ही कुछ चौंक उठे फिर उसकी ओर एकटक देखते रह गये। इस युवती के आते ही पोखरे पर की और युवतियाँ चुप हो गईं। ग़ाज़ीखाँ एक सरदार से कहने लगे—वल्लाह, क्या परी जमाल है। चाल-ढाल से हिंदुनीसी जान पड़ती है। अगर यह मुसलमानिनी हो जाय तो खुदा की क़सम, इसे मैं अपनी बेगम बना लूँ।

सरदार—(युवती को देखकर) हुजूर है तो इसी क़ाबिल किसी तरह हाथभर लग जाय, फिर काफ़िर को मुसलमान बनाना शरअन जायज़ है ही। बस मुसलमान कर लीजिये हुजूर की मुराद बर आयेगी।

गाज़ीखाँ—दोस्त! यह भी तो मालूम नहीं कि है कौन! खुदा जानता है, मैं तो देखते ही इस परी-रू पर मायल हो गया। लो, वह चल भी दी। भाई, ज़रा पीछे जाकर पता तो लगाओ कहाँ जाती है। शायद ज़रूरत ही पड़ जाय।

युवती पानी भरकर चुपचाप वहाँ से चली गई। पीछे पीछे सरदार भी हो लिया। इधर युवती के जाते ही पोखरे पर की स्त्रियाँ फिर बातें करने लगीं।

पहली—चाची, देखो तो इस शान्ता को, कैसा घमंड करती है! किसी से बोली भी तो नहीं मानो कहीं की रानी है!

दूसरी—हाँ बहन, कल मैं इसे बाज़ार में मिल गई। मैंने इससे बात करने के बहाने पूछा, बहन तुम्हारा घर कहाँ है। तो यह चुपकी रही। मैंने फिर एक-दो बातें और कही तो मुँह फिरा दूसरी ओर चली गई। राँड न जाने कहाँ से आ गई है। धरती पर पैर ही नहीं रखती।

तीसरी—बुआ, उस दिन मैं भूलो की माँ के घर गई थी तो इसकी चर्चा होने लगी। सुना है अपने बाप से लड़कर भाग आई है तभी तो किसी को अपना घर नहीं बताती।

चौथी—बेटी, जानती भी हो। भाग नहीं आई, बाप ने घर से निकाल दिया है, नहीं तो कोई बाप से भी लड़ता है?

पहली—चाची, भला बाप ने क्यों निकाल दिया? कोई बड़ी ही ख़ता की होगी!

चौथी—बड़ी ख़ता तो थी ही पर किसी से कहना मत कि मैंने तुम्हें बताया था।

सब—नहीं चाची, हम क्यों कहने लगे। हाँ, तो क्या ख़ता थी?

चाची—सुनो, जिस दिन यह आई थी उस दिन मैं सुख-देई जीजी के यहाँ गई थी। मैं वहाँ बैठी ही थी कि बूढ़ी नानी इसे लिये हुए वहाँ आ गईं। जीजी ने नानी को बैठाकर पूछा—नानी, यह कौन है? तो नानी ने बताया। मैं भी सुनती रही। उन्होंने इसके बाप का नाम तो नहीं बताया। पर इतना ही कहा कि यह एक भले घर की लड़की है। इसका नाम शान्ता है। इसके पिता इसका ब्याह एक अच्छे घर में करना चाहते थे पर यह माधव नामी एक आदमी से प्रेम करती थी। इसने अपने बाप से यह कहा। वह बहुत बिगड़े। यह माधव को वरना विचार चुकी थी, चली आई। मैं सुनती रही। मेरी समझ में तो इसके बाप ने इसका चरित्र कलंकित देखकर घर से निकाल दिया होगा।

दूसरी—क्यों चाची, यह भी मालूम हुआ यह माधव कौन है?

चाची—हाँ, मालूम क्यों नहीं हुआ। नानी के बेटे आबाजी सोनीदेव की सेना का एक सैनिक है। सुना है, बड़ा वीर है।

तीसरी—तभी तो इसे इतना घमंड है!

ये सब स्त्रियाँ तो यह बातें करती हुई पानी भरकर चली गईं, किंतु ग़ाज़ीखाँ बड़े ध्यान से इनकी बातें सुन रहे थे। उन्हें उस स्त्री के परिचय के साथ ही साथ और बहुतसी बातें ज्ञात हो गईं। माधव का नाम सुनते ही उन्हें दुर्ग के युद्ध की बात याद आ गई। उन्होंने सरदार आबाजी सोनीदेव को माधव का नाम पुकारते सुना था। बिजली की चमक में उन्होंने माधव की सूरत भी देखी थी। उन्हें माधव पर क्रोध चढ़ आया और उससे यही बदला लेना

ठीक विचारा कि शान्ता को पकड़कर बेगम बनावें और फिर माधव को भी किसी प्रकार पकड़ शान्ता को दिखाकर मार डालें। वे चुपचाप शान्ता को पकड़ने का उपाय सोचने लगे। थोड़ी देर बाद वे उठ बैठे उनके मुख की आकृति देखने से ज्ञात होता था कि उन्होंने कोई विचार दृढ़ कर लिया है। वे बार बार बस्ती की ओर देखने लगे। थोड़ी देर बाद दूर पर इनके सरदार आते दिखाई दिये। ये उठकर खड़े हो गये और दूसरे सरदार को भी साथ लेकर सरदार के पास पहुँच गये। फिर तीनों ने धीरे धीरे कुछ बातें कीं और एक ओर चले गये।

सन्ध्या का समय है,पक्षी अपने अपने बसेरों की ओर उड़े चले जा रहे हैं। अभी थोड़ी देर में अँधेरा हो जायगा। शान्ता एक छोटेसे मकान के एक कमरे में बैठी अपनी दशा पर विचार कर रही है—एक बूढ़ी नानी को छोड़कर गाँव की समस्त स्त्रियाँ मुझसे नाराज़ हैं। इसी कारण मुझे उनके भाँति भाँति के शब्द-बाण सुनने पड़ते हैं। बूढ़ी नानी को ही न-जाने क्यों कुछ प्रेम हो गया है। सम्भव है नानी अपने अनुभव द्वारा मेरे हृदय का परिचय पा गई हो। उन्होंने उद्योग करके माधव का पता लगाया है। वह उन्हीं के पुत्र की सेवा में सैनिक हैं। अब उनके विचार भी परिवर्तित हो गये हैं। आजकल वे देश-सेवा में लगे हैं। अपना कर्तव्य पालन करने के लिए उन्होंने अपने प्राणों का मोह छोड़ दिया है। क्या वे मुझे कभी याद भी करते होंगे? नहीं, मैंने उन्हें झिड़क दिया था, क्रोध में भरकर न-जाने क्या क्या बुरा-भला कहा था। हाय, उस समय न-जाने मुझे क्या हो गया था। यह मान लिया कि उन्होंने कोई अनुचित

कार्य ही किया था तो वे मनुष्य ही तो थे। हे ईश्वर, क्या इस जीवन में फिर कभी उनको देख सकूँगी। इसी लालच से यहाँ पड़ी हूँ। नानी ने वचन दिया है कि वह आबाजी के साथ कभी न कभी अवश्य ही आवेंगे।

यही सब सोचते सोचते शान्ता ध्यान में मग्न हो गई। नानी आज किसी ग्रामनिवासी के यहाँ विवाहोत्सव में गई हुई थीं। शान्ता अकेली बैठी ऊपर-लिखे विचारों में निमग्न थी कि सहसा उसका ध्यान द्वार पर किसी के पुकारने से टूटा। वह उठकर शीघ्रता से द्वार के पास गई और थोड़ासा द्वार खोलकर पूछने लगी—कौन है? सड़क के ऊपर से एक मनुष्य निकल आया और द्वार के पास आकर खड़ा हो गया। शान्ता ने ऊपर से नीचे तक उस मनुष्य की ओर देखा। उसका समस्त शरीर वस्त्र से ढका हुआ था। शान्ता मन में डरी, फिर हृदय कड़ा करके पूछने लगी—आप कौन हैं?

आगन्तुक शान्ता—नाम की लड़की इस मकान में रहती है न?

शान्ता और भी डरी; कुछ पीछे हटकर बोली—आपको उससे क्या काम है?

आगन्तुक—मैं यह तब तक नहीं बता सकता जब तक शान्ता मेरे सामने न आवे। हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि कार्य अत्यन्त आवश्यक है। मैं माधव नामी मरहठा सिपाही के पास से आया हूँ। न-जाने उसकी अब क्या हालत होगी।

आगन्तुक ने अंतिम शब्द धीरे से कहा मानो वह शब्द वह सुनाना नहीं चाहता था। पाठक, आप इस आगन्तुक को अवश्य ही पहचान गये होंगे। यह हमारे पूर्व-परिचित

ग़ाज़ीखाँ हैं। सलाह के अनुसार यह वेष बदलकर शान्ता को उड़ा ले जाने की फ़िक्र में बूढ़ी नानी के मकान पर आये हैं। इनके एक सरदार ने इन्हें बूढ़ी नानी के बाहर जाने की सूचना पहले ही दे दी थी। इन्हें यह भी ज्ञात हो गया था कि उस मकान में बूढ़ी नानी और शान्ता के अतिरिक्त और कोई नहीं रहता है। परन्तु फिर भी निश्चयरूप से शान्ता पर ही हाथ डालने के लिए उन्होंने ऊपर-लिखी बात कही। सुनकर शान्ता सहम गई। आगन्तुक के अन्तिम शब्दों ने उसके हृदय में न-जाने कैसे कैसे विचार उत्पन्न कर दिये। उसके मन में माधव के अनिष्ट का आशंका भाँति भाँति के रूप धारण करने लगी। उसका विवेक जाता रहा। वह अपनेआपको भी भूल गई और बोली—शान्ता मैं ही हूँ, कहिये माधव को क्या हो गया है? उन्होंने मुझसे क्या कहा है? उन्हें मेरे यहाँ होने का पता क्योंकर लगा?

आगन्तुक चुप हो गया। वह और भी व्यग्र हो उठी और बड़ी विनय के साथ बोली—महाशय, शीघ्र कहिये क्या बात है?

आगन्तुक—क्या बताऊँ, कहना ही पड़ता है। माधव और हम सब लोग पुरंधर का दुर्ग जीतकर इधर ही आ रहे थे। माधव को आपके यहाँ होने की किसी प्रकार ख़बर मिल गई थी। वे आपसे मिलने के लिए उतावले हो रहे थे। परन्तु राह में अचानक हम लोगों पर एक छोटीसी मुसलमान सेना ने धावा किया और बेचारे माधव...क्या कहूँ...उन्हीं से लड़ते लड़ते मारे गये।

शान्ता की आँखों के आगे आकाश नाचने लगा। पैरों

के नीचे से पृथ्वी निकलती हुई ज्ञात होने लगी। फिर अंधकार हो गया। वह संज्ञाहीन होकर पृथ्वी पर गिर गई। ग़ाज़ीख़ाँ ने झटपट ताली बजाई। दोनों सरदार पास ही की एक गली से बाहर निकल आये। तीनों ने मिलकर शान्ता को उठा लिया और एक ओर चले गये। उस समय दूर से विवाहोत्सव के कोलाहल की ध्वनि आ रही थी।

अष्टम परिच्छेद

जिस समय शान्ता को चेत हुआ तो उसने देखा कि वह एक घने जंगल में एक घोड़े की पीठ पर बँधी हुई है। एक अश्वारोही उसके घोड़ेके आगे आगे जा रहा है और दो और व्यक्ति दोनों ओर से उसके घोड़े की बाग पकड़े हुए साथ साथ चले जा रहे हैं। अश्वारोही तीनों ही यवन सैनिकों केसे वस्त्र पहने हुए हैं, परन्तु उनमें से एक शेष दोनों से अधिक मूल्य के कपड़े पहने हुए हैं, और उन दोनों का सरदार मालूम पड़ता है। यह सरदार शान्ता के घोड़े के दाहनी ओर चल रहा था और अपने साथी से जो बाईं ओर चल रहा था कुछ बातें करता जाता था। शान्ता उनकी बातें सुनने लगी। हमें अपने पाठकों को यह न बताना होगा कि ये तीनों अश्वारोही ग़ाज़ीख़ाँ और उनके दोनों सरदार हैं। ग़ाज़ीख़ाँ आकाश की ओर देखकर फिर अपने सरदार से कहने लगा—क्यों जी, अब भला कितनी दूर और चलना होगा?

सरदार—हुजूर, अब बहुत दूर नहीं है। यहाँ से थोड़ी दूर पर घने जंगल में एक टूटी हुई इमारत है। पुराने ज़माने में शायद वहाँ कोई क़िला रहा होगा। मगर अब वहाँ दो-तीन टूटे-फूटे घरों के सिवा और कुछ भी नहीं है। उस इमारत में पहुँचते ही हम लोग अपने मंज़िले-मक़सूद पर पहुँच जायँगे। मियाँ रहीम सरदार हैं तो क्या हुआ, अच्छे ख़ासे मौलवी क़ाज़ी का काम बख़ूबी अंजाम दे सकेंगे। मगर हाँ यह तो फ़रमाइये कि शान्ता के सामने आप वह हिन्दी अल्फ़ाज़ बोलते गड़बड़ाये तो नहीं। न-मालूम आपने काफ़िराना ज़बान कैसे याद रक्खी होगी।

ग़ाज़ीख़ाँ—अगर गड़बड़ाता तो माशूक़ा ही हाथ कैसे लगती। मगर मियाँ अब जल्दी चलो, मुझे एक एक मिनट दुश्वार हो रहा है। दिल बेचैन है और बदले की आग जिगर को जलाकर स्याह किये दे रही है। अगर यह मरदूद माधव न आ गया होता तो मैंने ज़रूर ही एक बार दुश्मन को मार दिया होता। सरदार के मरते ही हमारी फ़तह हो जाती। कम्बख़्त ने आकर सारा मामला बिगाड़ दिया।

सरदार—हुज़ूर, वह देखिये सामने उस इमारत के खंडहर चमक रहे हैं। अब थोड़ी देर में वहाँ पहुँच जाते हैं।

इस प्रकार बातें करते करते वे सब एक चढ़ाई पर चढ़ने लगे। यह खंडहर उस टीले के ऊपर था। देखने में ऐसा ज्ञात होता था कि कभी इसके भी अच्छे दिन रहे होंगे; परन्तु क्षणिक सांसारिक सुख और सौंदर्य की भाँति इसका भी यौवनकाल व्यतीत हो गया और अब यह अपनी जीर्ण अवस्था में खड़ा ऊर्द्ध्व श्वास ले रहा है। इस भग्न गृह का कुछ हिस्सा अभी तक वर्षा और वायु के आघात सहता

हुआ किसी भाँति अपने जीवन के अन्तिम दिन की राह देख रहा था। किसी समय इसी भवन में किसी राजा या नवाब का निवास रहा होगा। यह भी अपने निवासियों का ऐश्वर्य देखकर घमंड से सिर ऊँचा किये खड़ा था; परन्तु अब उसका वह घमंड चूर हो गया था। अब उन्हीं ऐश्वर्य-शाली क्रोड़ास्थलों में उल्लू और चमगादड़ अपने घोंसले बनाये हुए थे। जिस गृह में कभी सहस्रों दास-दासी चहल-पहल करते-फिरते थे अब वहाँ एक भी मनुष्य दिखाई नहीं देता। हाँ, कभी कभी कोई भूला-भटका पथिक या चोर-डाकू ही उस गृह की उस नीरवता को भंग करते थे। ईश्वर की महिमा अपार है जो ऊँचे उठते हैं उन्हें वह अवश्य नीचा दिखाता है। उसे किसी का घमंड नहीं भाता।

धीरे धीरे टीले पर चढ़कर ग़ाज़ीखाँ और उनके साथी उन टूटी-फूटी कोठरियों तक पहुँचे। तीनों आदमी घोड़ों से कूद पड़े। शान्ता को भी घोड़े से खोल लिया। घोड़े पर मैदान में अधिक देर बंधी रहने के कारण वह खड़ी न हो सकी इस लिए सरदार ने उसे उठा लिया और एक कोठरी की ओर बढ़ा। इनके पैरों की चाप सुनकर एक गीदड़ एक ओर से निकल-कर इनके सामने से भागा। यह कोठरी के अंदर घुसे। उस समय सूर्य अस्त हो चुके थे। कोठरी में अँधेरा था परन्तु कोठरी के बाहर अभी कुछ कुछ प्रकाश था। इनके कोठरी में पहुँचते ही बीसों चमगादड़ इधर-उधर उड़ गये, उल्लू भी हँस उठा। ग़ाज़ीखाँ ने एक दिया जलाया। कोठरी के अन्दर मनों गर्द जमी हुई थी। चारों ओर दीवारों पर जाले लगे हुए थे। ग़ाज़ीखाँ एक ओर झाड़कर बैठ गये।

शान्ता को भी एक स्थान साफ़ करके बैठाया गया। अभी तक शान्ता कुछ न बोली थी। वह अत्यन्त ही अशक्त हो रही थी। चुपचाप बैठकर वह यह देखने लगी कि अब क्या होता है। थोड़ी देर सुस्ता लेने के पश्चात् ग़ाज़ीखाँ ने शान्ता से कहा—शान्ता, तुम जानती हो कि हम तुम्हें यहाँ क्यों लाये ?

शान्ता चुप रही। उसने कुछ भी उत्तर न दिया। उसे निश्शंक होकर पराये पुरुषों से बोलने का अभ्यास न था। ग़ाज़ीखाँ फिर कहने लगे—सुनो शान्ता, हमारे मज़हब में काफ़िर को मुसलमान बनाने का बड़ा ही सबाब (पुण्य) है। वही सबाब हम लोग तुम्हें मुसलमान बनाकर पावेंगे। यह मत समझना कि बस यहीं हमारा काम ख़त्म हो जायगा। नहीं, उसके बाद हम अपने साथ निकाह पढ़वाकर तुम्हें अपनी बेगम बनायेंगे। लो, तैयार हो जाओ। मेरा ख्याल है कि तुम्हें भूख भी लगी होगी। मेरे साथियों के पास खाने का सामान मौजूद है। आओ, हम सब मिलकर कुछ खा लें फिर और काम होते रहेंगे।

अब की बार शान्ता को बात करने का मौका मिल गई। वह व्यंग्य की हँसी हँसकर अवहेला के साथ बोली—क्षमा कीजियेगा। मैं तुम्हारे किसी भी प्रस्ताव से जिन्हें तुमने इतने अच्छे प्रकार बखाना है सहमत नहीं हूँ। नीच, तू मुझे अकेली समझकर मेरा अपमान कर रहा है। परन्तु याद रख क्षत्रिय की बेटी अपमान सहने से पहले जान दे देना सहस्र गुना श्रेष्ठ समझती है। मुझे धोखा देकर तू यहाँ ले आया है। इस तेरे पाप का फल सर्वशक्तिमान्

जगदीश्वर तुझे देंगे। मूर्ख, तूने सोचा होगा कि मैं भूख से व्याकुल होकर तेरा लाया हुआ खाना खा लूँगी। यह बात तेरे ध्यान में भी न आई होगी कि मैं भूख से व्याकुल होने के पहले ही इस असार संसार को त्याग दूँगी। तू यह जान ले कि हरएक क्षत्रिय-बालिका अपने को नष्ट करने का यन्त्र सदैव अपने पास रखती है। हम लोग अपनी जान दे देना कुछ भी कठिन कार्य नहीं समझतीं। मैं तुझ पर और तेरे नीच प्रस्ताव पर थूकती हूँ। नीच, तुझे अकेली अबला पर अत्याचार करते लज्जा भी नहीं आती। योद्धाओं का काम अबलाओं की रक्षा करना है, न कि उन्हें पीड़ित करना!

ग़ाज़ीखाँ—(हँसकर) मैंने जो कुछ किया है ठीक किया है। मैं योद्धा हूँ और तुझे मुसीबत से छुड़ाने के लिए ही अपनी बेगम बनाने को तैयार हूँ। रही मरने की बात, सो तुम मरोगी तो तभी ही जब मैं मरने दूँगा। ख़ुदा चाहेगा तो थोड़ी देर में ही तुम यह सब भूल जाओगी और मेरे साथ आराम से रहकर कुछ ही दिनों में मेरी मुहब्बत का दम भरने लगोगी।

शान्ता मारे क्रोध के लाल हो गई। उसके नथने फूल गये। मुँह में झाग भर आये और बात करना कठिन हो गया। मारे अपमान के उसका शरीर जलने लगा। वह रक्त-वर्ण आँखों से ग़ाज़ीखाँ की ओर चुपचाप देखती रही उसका समस्त शरीर काँप रहा था। ग़ाज़ीखाँ उसे इस प्रकार क्रोधित देखकर फिर मुसकुराया और बोला—ख़ुदा की क़सम, शान्ता इस गुस्से की हालत में तो तुम्हारा हुस्न हज़ारों गुना बढ़ गया। मैं पहले से हज़ार दर्जे ज्यादा तुमसे मुहब्बत करने लगा।

प्यारी, लो आओ, जल्दी से कलमा पढ़ो क्योंकि मैं अब एक पल भी सब्र नहीं कर सकता।

शान्ता चुप रही। उसका शरीर पहले से अधिक काँप रहा था। श्वास दुगने वेग से चल रही थी और वह क्रोध के ताप से भुनी जा रही थी। ग़ाज़ीखाँ कामोन्मत्त हो रहा था वह फिर कहने लगा—देखो शान्ता, चुप न रहो; मैं तुम्हे कितना प्यार करता हूँ। तुमने मुझे गालियाँ दीं, हर तरह बुरा-भला कहा, मगर मैंने सब चुपचाप सुन लिया। यह तुम्हारी मुहब्बत के ही सबब से था वरना किसी की मजाल थी कि ग़ाज़ीखाँ को इस तरह आँखें दिखाता या आधी बात कहता! तुम देखतीं कि अगर किसी और ने ऐसी गुस्ताखी की होती तो मैं उसकी आँखें निकलवा लेता और जिस ज़बान से मुझे गाली दी गई थी उसे नुचवा कर कुत्तों को खिला देता। मगर देखो, तुम्हारी बात सुनकर मेरे चेहरे पर बल भी नहीं पड़ा; बल्कि मैंने तुम्हारा सब ग़ुस्सा मुहब्बत के कहे कलमों की तरह बरदाश्त कर लिया। क्यों, क्या मैं तुमसे मुहब्बत नहीं करता? लो, अब तुम सब कुछ कह-सुन चुकीं अब तो एक बार खुशी से सच्चा दीन-इसलाम क़बूल कर लो और फिर मेरे बग़लगीर हो। मैं तुम्हारे आगे घुटने टेककर इस्तदुआ करता हूँ। शान्ता, लिल्लाह मेरी बात मान जाओ इनकार करके मेरा दिल मत तोड़ो।

इतना कहकर ग़ाज़ीखाँ ने घुटनों के बल बैठकर शान्ता का हाथ पकड़ लिया। शान्ता को मानो बिच्छू ने डंक मार दिया। उसने अपना हाथ खींच लिया और तुरन्त ही अपने हाथ में कटार लेकर ग़ाज़ीखाँ पर आक्रमण किया। ग़ाज़ीखाँ

ने अपने को बचाया परन्तु उनके दाहने हाथ की कलाई में कटार बैठ गई। साथ ही शान्ता की वाणी भी फिर आई। वह क्रोध से काँपते हुए स्वर से कहने लगी—नीच, नर-पिशाच! क्षत्राणी के अपमान करने का फल भोग! कुत्ते मैं तुझे मारे बिना न छोड़ूँगी!

चोट खाकर गाज़ीखाँ का मस्तिष्क घूम गया, परन्तु उसने अपने को सँभाला। उसे क्रोध चढ़ आया। उधर सरदारों ने गाज़ीखाँ के हाथ से रक्त-प्रवाह होते देखकर शान्ता से छुरा छीनना चाहा। शान्ता उन पर आक्रमण करने को तत्पर हो गई। उन लोगों ने भी खड्ग खींच ली और दोनों मिलकर शान्ता से लड़ने लगे। गाज़ीखाँ क्रोध में चूर हो रहे थे परन्तु हाथ में गहरा घाव खाकर बेकार हो गये थे। वे अपने सरदारों से ललकारकर कहने लगे—देखो, जान से मत मारना। इसे जिन्दा ही गिरफ्तार कर लो फिर मैं इसे इस गुस्ताखी का मज़ा चखाऊँगा।

थोड़ी देर तक बड़ी वीरता से लड़कर शान्ता शिथिल पड़ने लगी। एकसाथ दो दो शत्रुओं की खड्गों का प्रहार बचाने और आप केवल कटार लिये हुए ही लड़ने से वह अपनेआपको अधिक देर तक न बचा सकी। उसके कोमल शरीर में कई घाव लग गये। उनसे रक्त बहने के कारण उसकी शक्ति क्षीण पड़ गई और उसे ज्ञात होने लगा कि यदि थोड़े समय और इसी प्रकार लड़ती रही तो अवश्य ही बन्दी हो जाऊँगी। यह विचारकर उसने अपना जीवन समाप्त कर देना ही विचारा। विचारनेभर की ही देर थी, कटार उठाई और चाहती थी कि अपने हृदय में भोंककर काम-तमाम कर दे, परन्तु गाज़ीखाँ चुपचाप खड़ा उसकी मुखाकृति के

उतार-चढ़ावों को देख रहा था। उसने उसके मन की बात ताड़ ली और शान्ता के पीछे जा खड़ा हुआ और ज्यों ही शान्ता ने आत्मघात करने के लिए कटार उठाई कि ग़ाज़ीखाँ ने पीछे से हाथ पकड़ लिया। फिर क्या था, सरदारों ने बात की बात में कटार छीन ली और उसे बन्दी कर लिया।

शान्ता को बंदी करने के पश्चात् सरदारों ने ग़ाज़ीखाँ के हाथ पर पट्टी बाँध दी। इस काम से निपटकर ग़ाज़ीखाँ ने सरदारों से कहा—बोलो, इसको इसकी गुस्ताखी की क्या सज़ा दी जाय। मेरी राय तो खाली जान से मार देना इसके लिए काफ़ी सज़ा नहीं है। हाँ, अगर ज़िन्दा ही जला दिया जाय तो इसके कुसूर की कुछ सजा हो सकती है। क्यों, क्या कहते हो?

थोड़ी देर तक दोनों सरदार चुप रहे। फिर रहीमखाँ हाथ जोड़कर यों कहने लगे—हुज़ूर, इसकी गुस्ताखी तो इसी क़ाबिल है कि हुज़ूर इसे ज़िन्दा जलवा भी दें तो भी उसकी वह काफी सज़ा न समझी जाय। मगर हुज़ूर, गुलाम की जाँबख्शी हो तो एक बात अर्ज़ करे।

ग़ाज़ीखाँ—कहो, क्या कहना चाहते हो?

रहीमखाँ—यही कि आप एक आदमीको मुसलमान बनाने का सबाब लें। ऐसा हो जिसमें साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। अगर यह नाआक़बतअन्देश (अदूरदर्शी) औरत दीन-इसलाम अब भी क़बूल कर ले तो इसकी जान बख्श दी जाय। हुज़ूर, मेरी तो नाक़िस राय यही है आगे हुज़ूर मुख्तार हैं जैसा हुक्म दें गुलाम लोग हाज़िर हैं।

ग़ाज़ीखाँ—मैं भी तो यही करना चाहता था बल्कि मैं तो यहाँ तक इसे इज़्ज़त देना चाहता था कि इसे अपनी बेगम

बनाने को तैयार था मगर इस नासमझ ने जो गुस्ताखी दिखाई; कभी क़ाबिल-माफ़ी नहीं है। मगर मुझे इसकी खूबसूरती और बहादुरी देखकर और तुम्हारी सिफ़ारिश सुनकर रहम आता है। तुमने मेरी बड़े मुसीबत के वक़्त मदद की थी इसी लिए तुम्हारी बात नहीं टालूँगा। जाओ, अगर यह दीन-इसलाम क़बूल कर ले तो मैं इसे माफ़ कर दूँगा और फिर भी इसे अपनी बेगम बना लूँगा, या अगर यह मेरी बेगम न बनना चाहे तो तुम दोनों में से जिसके साथ चाहे निकाह पढ़वा ले।

रहीमखाँ—खुदा हुजूर को सलामत रक्खे। क्या उन लोगों ने इंसाफ़ किया है। क्यों शान्ता, क्या सोच रही हो। बोलो, तुम्हारे सामने दो चीज़ें हैं पसन्द कर लो—एक तरफ़ खौफ़नाक आग में जलकर मरना और दूसरी ओर ऐश और हुक्मरानी! देखो खूब सोच-समझकर जवाब देना।

शान्ता—खूब सोच लिया है। मुझे मौत पसन्द है। डरपोक कायरो, तुम सोचते होगे कि मैं मृत्यु के भय से अपना धर्म छोड़ दूँगी। यह केवल तुम्हारा भ्रममात्र है। याद रक्खो क्षत्राणियाँ कभी मृत्यु से भय नहीं खातीं वह तो उनकी नित्य की सहेली है। नीच नर-पिशाचो, शीघ्र ही चिता तैयार कर दो, मैं तुम्हें दिखा दूँगी कि किस प्रकार क्षत्रिय-बालिकायें हँसते हँसते मृत्यु को अलिंगन करती हैं। शीघ्रता करो मुझे तुम्हारे साथ एक ही वायु में श्वास लेना भी कठिन प्रतीत होता है।

ग़ाज़ीखाँ—देखो शान्ता, तुमने तो मेरी सख्त तौहीन की है मगर मैं फिर भी आखिर मर्तबा तुम्हारी खूबसूरती पर रहम खाकर तुम्हें समझाता हूँ कि हमारा कहना

मान लो और ज़िन्दगी को क़ायम रक्खो। देखो, मैं तुम्हारे भले के लिए ही कह रहा हूँ।

सरदार— हाँ देखो, हुजूर तुम्हारे भले की ही कह रहे हैं। खुदा तुम्हें नेक सलाह दे तुमने अभी दुनिया में देखा ही क्या है। खुदा के वास्ते ज़िन्दा रहो। दीन-इसलाम कबूल कर लो और आराम से ज़िन्दगी बसर करो। खुदावन्द ताला रहीम है वह तुम्हारा गुनाह बख्श देगा और अपनी न्यामतों से निहाल कर देगा। मान जाओ। देखो, फ़जूल ज़िद करके जान देने से क्या फ़ायदा।

शान्ता—व्यर्थ बक बक से कोई लाभ नहीं। मैं तुम लोगों की घृणित बातें सुनकर अपना कान अपवित्र करना नहीं चाहती। याद रक्खो कि हम हिन्दू लोग सांसारिक सुख को कुछ भी नहीं समझते। सांसारिक सुख केवल मृगतृष्णा-मात्र है उसके लिए जो मनुष्य अपना अपना मनुष्यत्व या धर्म खोते हैं वे नरकगामी होते हैं और उन्हें पुनः पुनः आवागमन के कष्ट उठाने पड़ते हैं। इसके विपरीत वे लोग जो सर्वदा दुख-सुख में अपने धर्म पर दृढ़ रहते हैं। स्वर्ग-लोक को जाते हैं और अन्त को निर्वाण-पद प्राप्त करके आवागमन के समस्त दुखों से छुटकारा पा जाते हैं। इस क्षणिक सुख और क्षणभंगुर शरीर के लिए अपना दूसरा लोक बिगाड़ना सर्वथा मूर्खता है। अतएव मैं तुम्हारे धर्मको अपने धर्म के आगे ठोकर मारती हूँ। बस, मैंने मृत्यु पसन्द की है मुझे मरने दो। मैं इसी में सुखी होऊँगी!

ग़ाज़ीखाँ—इसी वक्त इतनी बहादुरी है। जिस वक्त आग की लपट लगेगी सब शेखी काफ़ूर हो जायगी। क्यों रहीम, अब तो तुम्हें कुछ नहीं कहना है। हमारा जितना समझाने का

हक़ था हम समझा चुके मगर इसकी समझ में हमारी एक बात भी नहीं आई और ऊपर से दीन-इसलाम की तौहीन की अब शरअन तुम्हारी क्या राय है?

रहीमखाँ—हुजूर, जिसके खुदा खिलाफ़ हो बंदे की क्या बिसात कि उसे बचा सके। शरअन दीन की बुराई करानेवाले को सज़ाये-मौत ही लिखी है। हुजूर, हम और आप कर ही क्या सकते हैं।

ग़ाज़ीखाँ—अच्छा तो फिर चिता तैयार करो। इसी समय अँधेरी रात में इस काफ़िर को जलाकर स्याह कर दिया जाय। (शान्ता से) शान्ता मरने के लिए तैयार हो जा, अब ज्यादा रहम हम तुझ पर नहीं दिखा सकते।

शान्ता—मैं सदैव मरने के लिए प्रस्तुत हूँ।

खुशामदी सरदारों ने बात की बात में लकड़ी इकट्ठा करके चिता तैयार कर दी। फिर उन्होंने शान्ता को हाथ-पैर बँधे हो उस पर रख दिया। एक सरदार ने मशाल जलाई! ग़ाज़ीखाँ ने फिर शान्ता से कहा—लो अब भी मान जाओ तो बच सकती हो वरना कोई चारा नहीं रहेगा।

शान्ता—चुप रहो कापुरुषो, मेरे पास इस समय तुम्हारे लिए व्यर्थ नष्ट करने को शब्द नहीं है।

यह कहकर शान्ता ईश्वर की प्रार्थना करने लगी। सरदार ने ग़ाज़ीखाँ का संकेत पाकर चिता में आग लगा दी। उस समय शान्ता माधव का ध्यान कर रही थी। उसने मन ही मन कहा—हा प्राणेश्वर! मुझे मरने का कोई दुख नहीं। हाँ, एक लालसा अवश्य रह गई, मरने से प्रथम एक बार आपके दर्शन नहीं हुए जो आपसे अपना अपराध क्षमा करा लेती। खैर, जो हरि-इच्छा। हृदयनाथ, यदि कभी

दासी का स्मरण हो तो मेरा अपराध क्षमा करना। मैं स्वर्ग में चलकर आपकी बाट जोहती रहूँगी। ईश्वर ने मेरे गर्व का फल अच्छा दिया। ओ३म्! ओ३म्!! ओ३म्!!

अग्नि प्रचण्ड हो उठी। सारे जंगल में उजेला हो गया। उसी प्रकाश में तीनों पिशाच खड़े होकर उस दृश्य को देखने लगे।

नवम परिच्छेद

कौन ऐसा भारतवासी है जिसके हृदय में महाराज शिवाजी के प्रति भक्ति नहीं? कौन वह मनुष्य जो उनकी वीरता के कार्यों का वृत्तान्त सुनकर प्रेम से गद्गद नहीं हो जाता? भारतवर्ष मुग़ल-पद्दलित, कांतिशक्तिहीन हो रहा था। वीर राजपूत लोग शक्तिहीन हो गये थे। राजस्थान के समस्त राजों ने मुग़लों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था और राजपूत घरानों की बेटियाँ धड़ाधड़ मुग़ल-हरमों में भेजी जा रही थीं। यहाँ तक कि जोधपुर और जयपुर के वीर महाराजागण भी मुग़लों का सेनापति कहलाना अपना सौभाग्य समझते थे। आपस में फूट फैली हुई थी। चारों ओर भारतवर्ष में इसी के विष-वृक्ष फूलते-फलते दिखाई देते थे। इस समय यही ज्ञात हो रहा था कि हिन्दूधर्म का शीघ्र ही अन्त हो जायगा। उसी समय दक्षिण से हिन्दू सौभाग्य का वायु बह उठा। उस वायु ने दिल्ली के छुद्र

सिंहासन को भी कंपित कर दिया। मुग़ल-साम्राज्य उसके कठोर आघात को सहन न कर सका और उसी में चूर चूर होकर बह गया। महाराज शिवाजी ने एक बार भारत-वासियों के मरे हुए हृदयों में फिर से वीरता की तरंगें उत्पन्न कर दीं। भारत के सुपुत्रों ने अपनी स्वतंत्र-रक्षा के लिए एक बार फिर से शस्त्र धारण किया। थोड़े समय के लिए भारत के भाग्याकाश में फिर सूर्य चमका। हरएक हिन्दू वीर शिवाजी के नाम को सुनकर जयजयकार के उच्च शब्द उच्चारण करने लगा। परन्तु भारत का भाग्य अच्छा नहीं था उसे तो अभी और दुख देखना था। किसी ने इस फूट के जंगल को काटने की चेष्टा नहीं की और भारत की संतान अपने लालच और लालसा के मद में मस्त होकर इसी के फल खा खाकर अधःपतन के अँधेरे कूप में जा गिरी। यही कारण था कि महाराज शिवाजी अपने महान् कार्यों से अलंकृत होते हुए भी शत्रुरहित न थे। भारत के कुछ सुपुत्र ऐसे भी थे जो पराधीन होते हुए भी स्वतन्त्रता नहीं चाहते थे। जो स्वतंत्रता के पथप्रदर्शक महाराज शिवाजी के साथ सहयोग करने को प्रस्तुत नहीं थे। यहीं तक नहीं वे उनकी दिन दिन बढ़ती देखकर मन ही मन जलते रहते थे और दिन-रात महाराज शिवाजी के अनिष्ट की कामना किया करते थे। उन महानुभावों में से अधिक प्रतिभाशाली चाकन-दुर्ग के अधीश्वर फिरंगजी नरसुला और शिवाजी के मामा बाजा मोहिटी थे। महाराज शिवाजी को भी इन लोगों की गुप्त मन्त्रणाओं के समाचार मिल गये थे। उन्होंने भी अपने मार्ग के कण्टकों की भाँति इन्हें भी दूर करने का विचार कर लिया। राजनीति के अनुसार प्रथम तो महाराज शिवाजी ने

उन्हें बहुतेरा समझाया, हर प्रकार का ऊँचा-नीचा दिखाया परन्तु उन लोगों ने एक भी न सुनी। अन्त को शिवाजी ने उनसे युद्ध ही करना स्थिर किया। दोनों के पास दूत द्वारा समाचार भेज दिया गया।

चाकन के सरदार फिरंगजी नरसुला एक बड़े वीर पुरुष और युद्धविद्या में दक्ष योद्धा थे। उन्हें जब शिवाजी का समाचार मिला तो वह चौकन्ने हो गये। रात्रि-समय एक छोटीसी सेना लेकर वे प्रायः दुर्ग के पास जंगल में दुर्ग की रक्षार्थ चक्कर लगाने लगे।

आज भी सूर्य के अस्त होने में अभी दो-तीन घंटे की देर है। फिरंगजी नरसुला अपने थोड़े सैनिकों के साथ पास के ही जंगल में भ्रमण कर रहे हैं अभी तक शिवाजीको धमकी के कार्य में परिणत होने की कोई संभावना नहीं दिखाई देती थी परन्तु फिर भी फिरंगजी अत्यन्त चौकन्ने थे। महाराज शिवाजी का कुछ ठीक नहीं कि किस समय आ पड़ें इस कारण सदैव तत्पर रहना ही उसका व्रत था। वह शिवाजी से अपनेआपको शक्ति में किसी प्रकार न्यून नहीं समझते थे। और उस दिन की बाट उत्सुकता के साथ देखते थे जिस दिन वह शिवाजी को अपने बाहुबल का परिचय रणभूमि में दे सकें। इधर गुप्तचर ने समाचार दिया कि महाराज शिवाजी ने अचानक सोपा पर आक्रमण कर दिया। बेचारा बाजी मोहिटी युद्ध के लिए तैयार न था। बड़े संकट में पड़ गया अन्त को शिवाजी से युद्ध करके मारा गया। सोपा पर शिवाजी का अधिकार हो गया। इस समाचार को पाकर फिरंगजी और भी सजग रहने लगे और दुगने उत्साह से रक्षा का कार्य करने लगे। वह कहा करते थे कि यदि शिवाजी ने

कभी इधर आने का साहस किया तो उसे ज्ञान हो जायगा कि चाकन सोपा नहीं है। यहाँ पर बाजी मोहिटी से नहीं वरन् फिरंगजी नरसुला से पाला पड़ेगा। सारी वीरता भुला देगा। बस ऐसे ही सोचकर नरसुला वीर जङ्गल में भ्रमण कर रहा था कि उसके सामने से मृगों का एक झुण्ड निकल गया। नरसुला का मन उनका पीछा करने को चंचल हो उठा। हृदय में ध्यान आया कि कहीं इधर शिवाजी न आ टपकें परन्तु उसने इस विचार को व्यर्थ कहकर उड़ा दिया और देखते देखते मृगों के पीछे घोड़ा बढ़ा दिया। उसके साथियों ने भी उसी का अनुसरण किया। मृग भी अपने पीछे अश्वारोहियों की आहट पाकर वायु-वेग से भागे। नरसुला भी उनके पीछे घोड़ा भगाकर चला। मृगों का झुण्ड तितर-बितर हो गया। साथी एक एक करके सब पीछे छूट गये। फिरंगजी एक मृग के पीछे घोड़ा उड़ाये चले जाते थे। उन्हें इस बात का तनिक भी ध्यान न था कि वह किस ओर जा रहे हैं या समय क्या है? सहसा मृग आँखों से ओझल हो गया। फिरंगजी ने जो सिर उठाकर देखा तो सूर्य अस्त हो चुके थे। चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। चारों ओर भयानक जङ्गल था और यह वहाँ अकेले खड़े थे। जङ्गल अपरिचित ज्ञात होता था पता ही नहीं था कि कहाँ हैं। थकान से तमाम शरीर चूर चूर हो रहा था। वह घोड़े से उतर पड़े और मार्ग ढूँढ़ने के अभिप्राय से एक ओर को अग्रसर हुए। जङ्गल घना था तिस पर रात्रि की अँधेरी बढ़ती जाती थी। पग पग पर कटीली झाड़ियों से अपनेआपको बचाते वह आगे बढ़े चले जाते थे। थोड़ी दूर चलने पर उन्हें जलप्रपात का झरझर शब्द सुनाई दिया। कुछ और आगे जाने पर वह उस

प्रपात के निकट पहुँच गये। सामने एक ऊँची और विकट पहाड़ी थी। उसमें से किसी गुप्त स्थान से जल निकलकर नीचे पत्थरों पर गिरकर झरझर शब्द करता हुआ बह रहा था। फिरंगजी ने सोते से जल पिया और अपने घोड़े को भी पिलाया। चित्त कुछ शान्त हुआ, परन्तु इस दुर्गम विकट जङ्गल से निकलने का मार्ग फिर भी न मिला। सामने की पहाड़ी पर उनके सीधे होने के कारण चढ़ना सर्वथा असम्भव था। पानी पीकर नरसुला फिर उत्साह से अपने दुर्ग का मार्ग खोजने लगा। वह घोड़े पर विनीत सिर बैठा एक ओर को चला जा रहा था। उसके हृदय में भयानक गुदगुदी मची हुई थी। वह सोच रहा था कि यदि उसकी अनुपस्थिति में शिवाजी ने आक्रमण किया तो फिर दुर्ग के वीरगण उसकी (फिरंगजी की) प्रतीक्षा करते हुए लड़ लड़कर वीर-गति को प्राप्त हो जायँगे, परन्तु उसके बिना शिवाजी का सामना कोई भी नहीं कर सकेगा। हाँ, छोटीसी मृगया के कारण दुर्ग हाथ से निकल जायगा। हाय, कैसी बुरी घड़ी में मृगों को देखा। पश्चात्ताप से उसका हृदय व्याकुल हो रहा था। उसे अपने ऊपर बड़ा ही क्रोध आ रहा था। हा, इस छोटेसे मनोविनोद के लिए उसकी समस्त वाञ्छायें सारी कामनायें आकाश-कुसुम हुई जा रही थीं। वीर नरसुला अपने इन्हीं ख्यालों में इतना डूब गया था कि उसे अपनी सुध भी न रही। घोड़ा जिधर मन चाहे उधर जाने लगा। सहसा घोड़ा चौंककर खड़ा हो गया और फिर कनौतियाँ फेरने लगा। फिरंगजी मानो सोते से जाग उठे, बोले—क्या है पवन, खड़े क्यों हो गए ?

रात्रि अन्धकार में थी चारों ओर निस्तब्धता का राज्य

था। ऐसा सन्नाटा छाया था कि यदि सुई भी गिरती तो उसके गिरने का शब्द सुनाई देता! फिरंगजी इधर-उधर देखने लगे। सहसा उस शान्ति को भंग करता हुआ उन्हें शस्त्रों के चलने का शब्द सुनाई पड़ा। उनका रक्त वेग से बहने लगा और वे शब्द आने के स्थान की ओर को देखने लगे। उस समय उनका मन उनके कानों और आँखों में आ गया था। उस अन्धकार में उन्हें कुछ दिखाई तो न दिया परन्तु शब्द सुनकर यह अवश्य निश्चय हो गया कि कुछ मनुष्य आपस में युद्ध कर रहे हैं। युद्ध का कारण जानने का इनका हृदय चञ्चल उठा। शब्द को लक्ष्य करके यह उसी ओर चल दिये। थोड़ी ही दूर गए थे कि शब्द बन्द हो गया। यह किङ्कर्तव्यविमूढ़-से होकर यह सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये। पास ही एक शृगाल रो उठा। फिरंगजी का हृदय हर्षित हो गया। उन्होंने उस अन्धकार-मय जंगल में प्रकाश देखा। प्रकाश एक छोटीसी मशाल का मानो इनसे थोड़ी ही दूर पर जंगल में जल रही थी। उसके धीमे प्रकाश में इन्होंने कुछ और भी देखा कि तीन मनुष्य एक बंदी को लिये खड़े हैं। इन्होंने जो अधिक ध्यान से देखा तो बन्दी स्त्री ज्ञात हुई। फिरंगजी सोचने लगे—हा! क्या मेरे देखते स्त्री पर अत्याचार हो रहा है? नहीं ऐसा नहीं हो सकता। जब तक फिरंगजी के शरीर में क्षत्रिय-रक्त प्रवाहित है तब तक यह अबला पर अत्याचार नहीं होने देंगे।

इन्होंने अपने घोड़े को प्रकाश की ओर बढ़ाया। उधर उन तीनों व्यक्तियों ने उस नन्दिनी को उठाकर एक ऊंचे ढेर पर रख दिया। हा, यह क्या! क्या इसे जीवित ही जलाना चाहते हैं, दुष्ट कहीं के! इन्होंने घोड़े को और भी

तेज़ किया। सहसा इन्हें बड़े ज़ोर का धक्का लगा और यह घोड़े-सहित पृथ्वी पर गिर पड़े ! इस समय यह प्रकाश आने-वाले स्थान से कुछ ही दूर थे इन्होंने पृथ्वी से उठते उठाते उस समय एक शब्द सुना। किसी ने कहा—"लो, अब भी मान जाओ तो बच सकती हो वरना कोई चारा नहीं चलेगा।" पवन भी उठा से सा सारे जंगल में प्रकाश हो गया। यह क्या, पिशाचों ने चिता में आग लगा दी। फिरंगजी शीघ्रता से कूदकर घोड़े पर बैठ गए! पवन ने भी अपना नाम चरितार्थ कर दिया। वह द्रुतवेग से चला। चलते चलते इन्होंने चिता में से कुछ शब्द सुने परन्तु कुछ समझ में नहीं आया। बात की बात में घोड़ा चिता के समीप पहुँच गया। फिरङ्गजी ने देखा कि एक महाराष्ट्र स्त्री चिता पर बैठी है उसके मुख से दिव्य ज्योति निकल रही है। अग्नि बड़ी बड़ी कराल जिह्वायें निकालकर उसे ग्रास कर जाना चाहती है। पास ही तीन यवन खड़े इस दृश्य को देख रहे हैं। उन्होंने पवन को एँड़ लगाई। पवन चिता को कूद कर पार कर गया। फिरङ्गजी ने नीचे झुककर शान्ता को चिता पर से उठा लिया और धीरे से दूसरी ओर पृथ्वी पर रख दिया। चिता और भी ज़ोर से जलने लगी।

ग़ाज़ीख़ाँ ने जो अपने काम में विघ्न होते देखा तो पहले वह अचम्भे में आकर खड़ा रहा परन्तु तुरन्त ही उसे क्रोध चढ़ आया और दोनों सरदारों को ललकारते हुए फिरङ्गजी पर आक्रमण किया ! आहत हाथ से फिर रुधिर बहने लगा। फिरङ्गजी ने अपनेआपको बचा लिया परन्तु खड्ग घोड़े पर बैठ गई और पवन एक चीत्कार करके गिर पड़ा। फिरङ्गजी कूदकर एक ओर खड़े हो गये फिर क्या था,

लड़ाई खूब होने लगी। फिरङ्गजी बड़ी वीरता से उन तीनों के आक्रमण रोक रहे थे और साथ ही अवकाश मिलने पर आक्रमण करने से भी न चूकते थे। रहीम ने जो उन पर खड्ग चलाई तो उन्होंने बिजली की तरह शीघ्रता करके अपने को बचा लिया और रहीम के पीछे जाकर ऐसा हाथ मारा कि बेचारा रहीम 'या अल्लाह' कहकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। दूसरे सरदार की भी थोड़ी देर बाद वही दशा हुई।

अब अकेले ग़ाज़ीख़ाँ रह गये, वे अपनी जान पर खेलकर युद्ध करने लगे। दोनों बराबर के योद्धा थे और यदि ग़ाज़ीख़ाँ के हाथ से अधिक रक्त न बह गया होता तो फिरङ्गजी उन तीनों से पार न पा सकते। दोनों वीर युद्ध करते करते शिथिल हो गए। इसी समय ग़ाज़ीख़ाँ को अवकाश मिला। उसने फिरङ्गजी पर आक्रमण करने को खड्ग उठाई, परन्तु वह वायु में ही उठी रह गई और वह भूमि पर गिर पड़े। उनकी मृत्यु का कारण एक तीर थी जो पीछे से आकर उनको लगी। इसी समय एक अश्वारोही ने घोड़े से उतरकर फिरङ्गजी के चरण छुये। फिरङ्गजी ने अपने सरदार मूलजी को पहचानकर गले लगा लिया। उसी समय सारा जंगल घोड़ों की टापों के शब्द से गूँज उठा और देखते देखते फिरङ्गजी के सारे सैनिक वहाँ एकत्रित हो गए। फिरंगजी ने शान्ता को देखा उसके शरीर पर अग्नि की लपट लग जाने के कारण कई छाले पड़ गये थे और उसके सुकुमार अंगों पर भयानक घाव देखनेवालों के हृदयों में करुणा उत्पन्न कर देते थे। शान्ता उस समय संज्ञाहीन थी। फिरङ्गजी ने मूलजी से कहा— तीनों दुष्ट इस कन्या को जीता ही जलाना चाहते थे ईश्वर की दया से इसके प्राण बच गए और

तीनों दुष्ट अपने कर्मों का उचित फल पा गये। अब मैं इस कन्या को तुम्हें सौंपता हूँ इसे लेकर उस गुप्त स्थान में चले जाओ जहाँ हमने अपनी स्त्री को भेज दिया है। उन्हें सब वृत्तान्त सुना देना और इसकी रक्षा का भार सौंपकर मुझसे दुर्ग में आ मिलना। मैं यहाँ शिवाजी का स्वागत करने को प्रस्तुत रहूँगा। देखो, बड़ी सावधानी से काम करना, जाओ ईश्वर तुम्हारा मंगल करे।

इतना कहकर इन्होंने शान्ता को मूलजी के घोड़े पर रख दिया और आपने सेना-सहित दुर्ग की ओर प्रस्थान किया। मूलजी शान्ता को लेकर दूसरी ओर चले गए।

दशम परिच्छेद

नवयुवक सरदार मूलजी शान्ता को लेकर बीजापुर की ओर चला। भयानक वन और विकट राहें पार करता वह शान्ता को लिये चला जाता था। शान्ता को संसार की कुछ भी खबर न थी। वह चुपचाप घोड़े पर लटी हुई थी कठिन ज्वर उसके समस्त अंगों को खाये जा रहा था। मूलजी जल्दी जल्दी चला जाता था। जिस व्यक्ति का भार उसके स्वामी ने उसे दिया था उसे सकुशल पहुँचा देना वह अपना कर्तव्य समझता था इसी लिए वह दिन-रात विना कुछ खाये-पिये चला गया और अगले दिन सन्ध्या होने के पूर्व ही बीजापुर की सीमा में पहुँच गया। घोड़ा और वह दोनों पसीने पसीने हो रहे थे। मूलजी सीधा एक सराय की ओर चला गया वहाँ उसने शान्ता को घोड़े

पर से खोलकर एक स्वच्छ शय्या पर लिटा दिया और उनकी सेवा का भार वहाँ के एक कर्मचारी पर छोड़ आप फिर एक ओर चल दिया।

मूलजी से बहुत कम लोग परिचित थे इस कारण वह बेरोक-टोक घूमघुमैली राहें पार करता एक बड़े मकान के सामने जा खड़ा हुआ। मकान का विशाल द्वार बन्द था और वहाँ किसी प्रहरी इत्यादि का पता न था। मूलजी ने द्वार पर खड़े होकर एक अद्भुत प्रकार का शब्द किया जिसके उत्तर में उस द्वार के अन्दर से भी वैसा ही शब्द हुआ फिर द्वार में से एक छोटी सी खिड़की खुल गई और एक प्रहरी ने आकर पूछा—तिष्ठ! का आगतः?

मूलजी—मित्र!

प्रहरी—किम् चिह्नम्।

मूलजी—नरसुला!

प्रहरी—तिष्ठ!

धीरे धीरे द्वार खुल गया। मूलजी अंदर चले गए। द्वार फिर पूर्ववत् बन्द हो गया। प्रहरी ने फिर इनका अभिनन्दन किया। यह उसका उत्तर देकर महल की ओर बढ़े। द्वार पर पहुँचकर यह आगे बढ़ना ही चाहते थे कि प्रहरी ने कड़क-कर कहा—तिष्ठ! का आगतः?

मूलजी—अस्मिन् दुर्गरक्षक मूलजी भवान्।

प्रहरी—चिह्नम् वद।

मूलजी—नरसुला।

प्रहरी ने अभिनन्दन किया और मूलजी अन्दर पहुँच गए। वहाँ एक अत्यन्त सजे सजाये महल में यह एक ओर खड़े हो गये। एक दासी ने आकर इनसे कहा—चिह्नम् वद।

मूलजी—नरसुला !

दासी—चलिये, आपको महारानीजी बुला रही हैं।

मूलजी—चलो।

उस दासी के साथ जाकर मूलजी कई सहन और दालान पार करके एक सजे हुए कमरे में पहुँचे। सामने एक सुन्दर सिंहासन पर महारानीजी विराजमान थीं पास ही परिचारिकायें खड़ी थीं। सामने दाहनी ओर एक चौकी पर एक वृद्ध महापुरुष विराजमान थे। मूलजी ने पहुँचकर महारानीजी को दण्डवत की। महारानीजी ने आशीर्वाद दिया और फिर पूछने लगीं—कहिये मूलजी, कुशल तो है न, कैसे कष्ट किया।

मूलजी—परमपिता परमात्मा के अनुग्रह से सब कुशल है। मुझे अन्नदाताजी ने एक आवश्यक कार्य के लिए भेजा था आज्ञा हो तो निवेदन करूँ।

महारानी—कहो, क्या समाचार है ?

मूलजी—महारानीजी, कल सन्ध्या-समय हम सब और अन्नदाताजी दुर्ग को रक्षार्थ दुर्ग के सामीपिक वन में भ्रमण कर रहे थे। आपको ज्ञान ही होगा कि दुर्ग के चारों तरफ जङ्गल में जन्तु अधिक हैं बस अचानक एक मृग अन्नदाताजी के सामने से निकल गया। अन्नदाताजी का मन उस मृग को देखते ही व्याकुल हो गया। बस, वह उसके पीछे पड़ गए। हम सब लोग भी उनके पीछे चले। परन्तु थोड़े ही समय में अन्नदाताजी और मृग दोनों हमारी दृष्टि से ओझल हो गए। हम लोगों ने बहुतेरी चेष्टा की परन्तु उनके पैरों की धूल को भी नहीं पा सके। सूर्य पूर्णरूप से अस्त हो गए। समस्त जङ्गल ने अन्धकार की चादर ओढ़ ली। हम सब

व्यग्र हो उठे। ढूँढ़ते ढूँढ़ते थक गए तब निराश होकर दुर्ग की ओर चले सहसा सारे जङ्गल में प्रकाश हो गया। हम लोग चौकन्ने हो गए और सबने प्रकाश की ओर बाग मोड़ी। मैं बात की बात में वहाँ पहुँच गया जो कुछ मैंने देखा उसे देखकर मेरे आश्चर्य का पारावार न रहा। मैंने देखा कि एक चिता जल रही है। अन्नदाताजी तीन यवनों से लड़ रहे हैं। मेरे पहुँचते पहुँचते उन्होंने यवनों को मार गिराया। मेरे पहुँचने पर अन्नदाताजी ने मुझसे कहा कि ये दुष्ट (यवन लोग) इस अबला को जीवित ही जला रहे थे मैंने किसी प्रकार रक्षा कर ली अब तुम इसकी रक्षा का भार लो और इसे लेकर बीजापुर चले जाओ। वहाँ महारानीजी को इसकी देख-रेख का भार सौंपकर मुझसे दुर्ग पर आ मिलो। मैं उस स्त्री को लेकर सीधा यहाँ चला आया और उसे सराय में छोड़कर आपको आज्ञा लेने यहाँ चला आया हूँ। स्त्री ज्वर के कारण मूर्च्छित है। अब जैसी आज्ञा हो दास पालन करने को उपस्थित हो।

महारानी—महाराज की आज्ञा शिरोधार्य है। तुम जाकर विश्राम करो। मैं अपने विश्वस्त व्यक्ति भेजकर उस स्त्री को यहाँ बुलवा लेती हूँ।

मूलजी—क्षमा कीजियेगा, मैं अब विश्राम नहीं कर सकता। मुझे तुरन्त दुर्ग पर लौट जाना है। शिवाजी कभी भी आक्रमण कर सकता है। मुझे भी ऐसे ही समय की प्रतीक्षा लगी रहती है। अच्छा अब मुझे आज्ञा दीजिये, प्रणाम।

महारानी—आयुष्मान्। जाओ तुम्हें अपने कार्यों में सफलता हो।

मूलजी चले गये, महारानीजी ने उन वृद्ध महाशय से

कहा कि उस स्त्री को बुलवा लीजिये। थोड़े ही समय के पश्चात् शान्ता मूर्च्छित अवस्था में वहाँ ले आई गई। उसकी शुश्रूषा का सब प्रबन्ध कर दिया गया। महारानीजी स्वयं उसकी सेवा करने लगीं। उन्हें शान्ता को देखकर उससे एक अद्भुत प्रकार की सहानुभूति हो गई थी। इसी प्रकार रोग की अवस्था में मूर्च्छित पड़े कई दिन व्यतीत हो गये। वैद्य प्रतिदिवस दोनों समय उसे देखने आते थे परन्तु इतना होने पर भी शान्ता की मूर्च्छा भंग न हुई। तीव्र ज्वर के कारण वह दिन प्रतिदिन क्षीण होती जाती थी। ज्वर का कीड़ा धीरे धीरे उसके शरीर को खाने लगा। उसका रंग पीला पड़ गया। सारे शरीर में हड्डियों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रह गया। अनेक शुश्रूषा और औषधियों के प्रयोग के पश्चात् उस शान्ता के अस्थि-पंजर ने अन्त को एक दिवस आँखें खोल ही दी। उसके मस्तिष्क में पिछली सब घटनायें एक भयानक स्वप्नवत् प्रतीत हो रही थीं। धीरे से उसने सिर उठाकर उत्सुकता से अपने चारों ओर देखा फिर परिश्रम के कारण सिर उसी प्रकार रख लिया। थोड़ा सा सुस्ता लेने के पश्चात् उसने फिर सिर घुमाकर चारों ओर देखा। फिर अत्यन्त ही क्षीण स्वर से बोली—मैं कहाँ हूँ? हे ईश्वर, मुझे कहाँ ले आये? मैं तो चिता पर जला दी गई थी फिर क्या यह स्वर्ग तो नहीं है?

इतना कहकर शान्ता चुप हो गई परन्तु उसके वे क्षीण शब्द उस कमरे की वायु में लीन नहीं हो गये। उन्हें एक युवती ने सुन लिया और वह तुरन्त अपने स्थान से उठकर शान्ता की शय्या के पास आ गई और बड़े प्रेम से उसकी ओर देखकर बोली—प्यारी

बोलिये नहीं। अभी आपको पूर्णतया मौन रहना उचित है। कदाचित् बोलने के परिश्रम से बीमारी फिर लौट आवे। बहन, तुम सचमुच मौत ही के मुँह में से निकली हो। तुम्हारी अवस्था देखकर तो सबने तुम्हारे जीवन की आशा ही त्याग दी थी।

यह कहकर वह रमणी शान्ता के सिर पर हाथ फेरने लगी। शान्ता बोली—तो क्या यह स्वर्ग नहीं है ? क्या मैं मरी नहीं ? मैं तो जला दी गई थी फिर कैसे यहाँ आ गई, यह कौन स्थान है ?

रमणी—नहीं बहन, तुम सचमुच नहीं मरी हो वरन् कठिन ज्वर के कारण मरणासन्न हो रही हो। इस समय चुपचाप लेटी रहो फिर जब कुछ चित्त स्वस्थ होगा तो फिर सारी बातें ज्ञात हो जायँगी। अब तुम्हारा ज्वर उतर गया है।

शान्ता चुप हो गई। एक तो वह इस रमणी की बात टालना नहीं चाहती थी दूसरे रमणी से इतनी देर बातें करने से उसका साँस फूल गया था और वह थक गई थी। चुप होते ही उसे एक प्रकार की नींद सी आ गई। उस नींद से वह कमरे में कुछ खटका सुनकर चौंक पड़ी। एक वृद्ध ने कमरे में प्रवेश किया और उसके पास आकर उसकी नाड़ी देखी और फिर प्रसन्न मुख हो रमणी से बोले— अब बहुत अच्छी हैं कोई डर नहीं।

रमणी उठकर कहीं चली गई फिर थोड़ी देर बाद कुछ ओषधि लिये हुए लौट आई। वृद्ध ने शान्ता के आहत स्थानों पर ओषधि लगाकर फिर से पट्टी बाँध दी और फिर शान्ता से बोले—क्यों बेटी, अब तो तुम्हारा चित्त बहुत प्रसन्न है न ?

शान्ता—जी हाँ, आपके अनुग्रह से अब तो अच्छा प्रतीत होता है।

वृद्ध—हाँ मैं तो तुम्हारी सूरत देखते ही कह उठा था कि तुम्हारा चित्त अब अच्छा ज्ञात होता है। कुछ भूख भी मालूम होती है न?

शान्ता—नहीं, भूख तो नहीं है।

वृद्ध—यथार्थ में भूख होनी ही नहीं चाहिये। मैं तो पहले ही जानता था कि तुम्हें भूख नहीं होगी। देख लो मनोरमाजी, इन्हें तनिक भी भूख नहीं है।

रमणी ने सम्मानसूचक भाव से सिर हिला दिया। वृद्ध महाशय फिर बोले—क्यों बेटी, नींद तो नहीं मालूम देती?

शान्ता—नहीं, नींद नहीं मालूम देती।

वृद्ध ने फिर अपना सिर सन्तोषजनक भाव से हिलाते हुए कहा—अवश्य ही नहीं मालूम देती होगी। क्यों, न नींद और न प्यास ही है?

शान्ता—हाँ, प्यास तो अवश्य है।

वृद्ध—बहुत ठीक, यही मैं भी सोच रहा था मनोरमाजी देखिये, आप इन्हें थोड़ा दूध पिला दीजिये और भूख लगने पर बिना घी की खिचड़ी, समझ गई न? हाँ एक बात और भी है गर्मी अधिक है इस कारण द्वार खोल दीजिये और इन्हें कोई हलका वस्त्र ओढ़ा दीजिये। परन्तु ठंड न लग जाय इसका भी ध्यान रहे। मैं अब जाता हूँ।

मनोरमा ने वृद्ध का अभिनन्दन किया और वह शीघ्र ही वहाँ से चले गये।

वैद्यराज के चले जाने पर शान्ता को कुछ नींदसी आ गई। जब फिर उनकी आँख खुली तो रात्रि आधी जा

चुकी थी। मनोरमा ने आकर धीरे से शान्ता के गाल पर एक चूमा दिया और सोने चली गई। उनके चले जाने पर एक वृद्धा आई और शान्ता की शय्या के पास बैठ गई। बैठे बैठे वह ऊँघने लगी।

शान्ता को बहुत समय तक नींद न आई। वह अपनी शय्या पर पड़ी जाग रही थी और दीपाधार के धीमे प्रकाश में वह छत पर भाँति भाँति की सूरतें देखने लगी। उसके हृदय में नाना प्रकार के विचार चक्कर लगा रहे थे। वह सोचने लगी कि मैं कहाँ हूँ। क्या यह भी कोई यवनों का जाल ही तो नहीं है। हे ईश्वर, यदि यह यवनों का जाल हो तो मुझे स्वस्थ करने के बदले मृत्यु दे दे। फिर सोचती कि मालूम तो होता है धोखा नहीं है। जो युवती मेरे पास बैठी थी उसकी आँखों कीसी ज्योति धोखेबाजों में कभी नहीं हो सकती। फिर यह हैं ही कौन लोग और क्यों मुझ पर इतनी कृपा कर रहे हैं। मैं यहाँ के किसी भी व्यक्ति से परिचित नहीं, न-मालूम मैं यहाँ कैसे आ गई। मुझे भली भाँति स्मरण है कि दुष्ट यवनों ने मेरी चिता में अग्नि लगा दी थी। उसके बाद का कुछ भी स्मरण नहीं आता। हाँ स्वप्न तक कुछ याद पड़ता है कि किसी ने मुझे चिता पर से उठा लिया था। परन्तु वह कौन व्यक्ति था कुछ स्मरण नहीं।

शान्ता कुछ देर तक इसी प्रकार सोचती रही। सोचते सोचते वह निद्रादेवी की गोद में विश्राम लेने लगी। धन्य निद्रे, तुम धन्य हो। जब व्यक्ति भाँति भाँति की सांसारिक चिन्ताओं में पड़कर अत्यन्त ही क्लान्त हो जाता है उस समय तुम्हीं आकर उसकी समस्त चिन्ताओं का अन्त कर देती हो। दीनों को सदा तुम्हारी आसरा रहती है। भूख से व्याकुल

चिन्ताओं से पीड़ित दरिद्र मनुष्य शीतकाल में तुम्हारी ही आराधना करता है। तुम्हारी कृपा ही उसको उस दुखरूपी कारागार से मुक्त कर आशा और शान्तिरूपी राम-राज्य में ले जाती है। तुम्हारी ही कृपा के द्वारा निर्धन भिखारी भी एक बार अपनेआपको राजमुकुट से विभूषित देख लेता है। जिस पर तुम्हारी कृपा नहीं वह मनुष्य कुबेर का धन रखते हुए भी बड़ा ही दीन है। तुम्हारी कृपा के कारण ही आज शान्ता समस्त चिन्ताओं से संसार के माया-जाल से मुक्त होकर सारा दुख भूल गई है!

जिस समय शान्ता की निद्रा भंग हुई उस समय दिन अनुमान से चार घण्टे चढ़ गया था। सूर्य भगवान् अपना सुखकर प्रकाश चारों ओर डाल रहे थे सब लोग उठ उठकर अपने कामों में लग गए थे। शान्ता की बीमारी का सब से कठिन भाग व्यतीत हो गया था वह मृत्यु के मुख से निकल आई थी। उसने ईश्वर की प्रार्थना की और फिर अपने चारों ओर देख अघाकर साँस ली। वह एक बार फिर संसाररूपी नाटक में भाग लेने को तैयार हो गई। प्रति दिवस वैद्यराज उसे देखने आते और उसकी शुश्रूषा का निरीक्षण कर चले जाते।

शान्ता मनोरमाजी की देख-रेख में शीघ्र स्वस्थ होने लगी। पाठक, यहाँ कह देना अनुचित न होगा कि मनोरमाजी को हमारे प्रिये पाठकगण मुकुट से विभूषित सिंहासन पर बैठे देख चुके हैं और हम उनका परिचय महारानीजी के नाम से दे चुके हैं।

आज शान्ता को आये दो सप्ताह व्यतीत हो गए हैं। आज उसमें इतनी शक्ति आ गई कि वह तकियों के सहारे

शय्या पर बैठने लगी है। उसे अपनी स्थिति बहुत कुछ ज्ञात हो गई है। फिरङ्गजी के प्रति उसके हृदय में भक्ति का संचार हो गया है और वह उनके उपकार का प्रतिशोध करने तथा उनका दर्शन करने के लिए उतावली हो रही है।

प्रातःकाल का समय है। शान्ता अपनी शय्या पर तकियों के सहारे बैठी है। पास ही एक चौकी पर मनोरमाजी बैठी हैं। दोनों धीरे धीरे कुछ बातें कर रही हैं।

मनोरमा—बहन शान्ता, आज तुम्हें स्वस्थ देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है। परन्तु, तुम्हारे मुख पर चिन्ता की रेखा देखकर मेरा उत्साह कुछ ठंडा पड़ जाता है। बहन, धैर्य रक्खो, अब की उनके आने पर मैं उनसे तुम्हारे दुख की बात कहूँगी। वह अवश्य ही इसका कुछ उपाय करेंगे। तुम उदास मत हो और अपने चित्त को बहलाओ।

शान्ता—महा रानीजी.......................

मनोरमा—(बात काटकर) देखो बहन, तुम मुझे महारानीजी मत कहा करो। तुमसे मुझे बहन कहलवाने में बड़ा आनन्द आता है। यदि तुम फिर मुझे महारानीजी कहोगी तो मैं तुमसे रुष्ट हो जाऊँगी।

शान्ता—अच्छा बहन, रंज मत हो मैं तुम्हें बहन ही कहा करूँगी। मैं तुम्हें जान रहते रंज नहीं करना चाहती। तुमने लिए बड़े कष्ट उठाये हैं। मैं तुम्हारी आजन्म ऋणी गी।

मनोरमा—इसका चर्चा मत करो। बहन, भला मैंने कौनसे कष्ट उठाये हैं? तुमसी सती की सेवा करना तो किसी को बड़े सौभाग्य से ही मिलता होगा, फिर मैंने तो पतिदेव की आज्ञापालन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं

किया है। फिर क्यों ऐसी बातें कहकर मुझे लजवाती हो।

शान्ता—बहन, यह आपकी उदारता है कि आप अपने किये उपकार को इतना तुच्छ समझती हैं। परन्तु हाँ, यह तो कहिये कि आपके पतिदेव कब आनेवाले हैं।

मनोरमा—हाँ, कल ही दूत द्वारा ज्ञात हुआ है कि वह आपको देखने तथा आपका हाल जानने के लिए बहुत ही उत्कंठित हो रहे हैं। आज-कल में आने-वाले हैं।

शान्ता—मैं भी उन्हें देखकर उनसे अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँगी। उन्होंने बिना जाने-बूझे मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया है।

शान्ता यह कह रही थी कि तुरही का शब्द सारे महल में गूँज उठा। इसी समय एक दासी दौड़ी हुई आई और मनोरमाजी से हाथ जोड़कर बोली—महारानीजी, अन्न-दाताजी पधारे हैं। यह सुनकर वह उठ खड़ी हुई और शान्ता से बोली—बहन, मैं उनके स्वागत के लिए जाती हूँ, क्षमा करना।

मनोरमा के चले जाने के बाद शान्ता अपने मन में विचार करने लगी—ज्ञात होता है कि श्रीमान् फिर, कुँजी आ गये। भगवान्! मैं उनसे किस प्रकार वार्तालाप करूँगी। उन्होंने कैसी भयानक स्थिति से मेरा उद्धार किया है। ईश्वर! इन्होंने अपनी जान का तनिक भी मोह न किया और तीन तीन यवनों और भयानक अग्नि के बीच से मुझे निकाल लाए। पुरुष भी कितने साहसी होते हैं और मैं......

यहाँ तक सोचते ही उसका ध्यान माधव की ओर चला गया और वह सोचने लगी कि मैं क्या हूँ! कुछ भी नहीं

मैं इस संसार में आकर दुख देने के अतिरिक्त किसी के साथ और कुछ भी नहीं किया। हा! जिन्हें मैं अपना सर्वस्व समझ चुकी थी, जिन्हें अपने हृदय में सबसे ऊँचे आसन पर स्थान दे चुकी थी उन्हें भी गर्व के मारे मैंने इतना दुख दिया कि वे मेरे कारण न-जाने कहाँ कहाँ भटकते फिरे और अब न जाने किस दशा में हैं। हाय, अपने पिता को—उन्हीं पिता को—जिन्होंने मुझे अपने प्राणों से अधिक रक्खा और पाला मैं क्रोधवश, उनका मन तोड़कर यहाँ चली आई। यहाँ भी इन बेचारे फिरंगजी के कष्ट का कारण हुई। हा दैव, क्या मेरे भाग्य में यही है कि न मैं सुखी होऊँ और न मेरे जीवनमार्ग में आनेवाला ही सुखी हो। दैव, मैंने ऐसे क्या पाप किये थे जिनका यह फल मिल रहा है! अच्छा दैव ठीक है जो कुछ भी कष्ट दोगे भोगूँगी, जो कुछ कराओगे करूँगी, तुम्हीं ने सृजा है अतएव चाहे जिस दशा में रक्खो, तुम्हें इस शरीर पर पूर्ण अधिकार है। क्योंकि हर व्यक्ति को अपनी वस्तु का अधिकार होता है। परन्तु दयामय तुम करुणा के सागर और भक्तवत्सल प्रसिद्ध हो फिर क्या इस प्रकार मुझे दुखी देखकर तुम्हारे हृदय में पीड़ा न होती होगी? भगवन्, आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि और चाहे जितने कष्ट सहन कराओ करा लो, परन्तु प्राणेश्वर के दर्शन एक बार अवश्य करा दो, जिससे मैं अपना शरीर उनके चरणों में डालकर अपने अपराध क्षमा कराने में समर्थ हो सकूँ।

इतना सोचते सोचते शान्ता ने अपने नेत्र मूँद लिये और ध्यानावस्थितसी होकर बैठ गई। नेत्र बन्द होते ही उसे अपने सामने माधव की मूर्त्ति दिखाई दी। मूर्त्ति कुछ मुसकुरा

रही थी परन्तु उस पर कुछ विषाद की मात्रा भी विद्यमान थी। शान्ता ने मूर्त्ति को प्रणाम किया। इसी समय कुछ खटका होने के कारण उसका ध्यान भंग हो गया। उसने जो नेत्र खोलकर देखा तो अपने सामने मनोरमा और एक वीर तेजस्वी युवक को खड़ा पाया। युवक के मुख पर कुछ मुसकुराहट थी। शान्ता एक वीर युवक को नीचे से ऊपर तक देख गई। युवक की आयु कोई पैंतीस वर्ष की होगी। क़द नाटा और शरीर गठा हुआ था। मुख से एक प्रकार का तेजसा निकल रहा था। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित उसका शरीर अत्यन्त ही भला मालूम होता था। शान्ता उठने की चेष्टा करने लगी, युवक फिर मुसकुराया और बोला—बेटी, उठने का कष्ट मत करो, तुम अभी अत्यन्त ही दुर्बल हो (मनोरमाजी की ओर मुँह करके) प्रिये, मैं इस समय इन्हें स्वस्थ देखकर जितना आह्लादित हुआ हूँ उतना कह नहीं सकता। (फिर शान्ता से) क्यों बेटी, अब तुम्हारा चित्त कैसा है।

शान्ता—ईश्वर की कृपा और आप दोनों के अनुग्रह से अब मैं पूर्णतया स्वस्थ हूँ। मेरे पास कृतज्ञता प्रकाशित करने को शब्द ही नहीं हैं मैं क्या करूँ।

युवक—इसकी आवश्यकता नहीं है। मैंने कोई अद्भुत कार्य नहीं किया है। हरएक क्षत्रिय वीर का धर्म है कि वह रमणियों की अत्याचार से रक्षा करे। मैं ईश्वर का कोटिशः धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझे इस योग्य समझा कि मुझे आपके उद्धार का निमित्त बनने का सौभाग्य प्राप्त कराया। यह सब तो हुआ परन्तु मैं आपका वृत्तान्त सुनने के लिए अत्यन्त ही उत्सुक हूँ। कृपया मुझे सुनाकर अनुगृहीत कीजिये।

शान्ता—श्रीमान्, मुझे अपना हाल सुनाने में कोई भी आपत्ति नहीं है परन्तु इस समय मैं सब हाल नहीं सुनाना चाहती, आशा है कि आप उसे सुनाने के लिए मुझे लाचार न करेंगे। मैं आपके अनुग्रह के बोझों से इतनी दबी हुई हूँ कि आपके आग्रह को टालना मेरे लिए सर्वथा असम्भव हो जायगा और मेरी प्रतिज्ञा भंग हो जायगी। श्रीमान् ही मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा कर सकते हैं। मुझे आज्ञा दीजिये कि अपना जितना हाल मैं जिस प्रकार चाहूँ सुना दूँ। आशा है, आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगे। हाँ, यह मैं अवश्य कहूँगी कि थोड़ा ही समय बीतने पर मेरा सब हाल आपको विदित हो जायगा।

युवक—फिरंगजो नरसुला इतना नीच प्रकृति नहीं है कि किसी रमणी को उसकी प्रतिज्ञा के विरुद्ध काम करने की सलाह दे। इस लिए बेटी, तुम जितना अपना हाल कहना चाहो कहो। यदि अभी बिलकुल न कहना चाहो तो भी कोई आपत्ति नहीं है। मैं अपनी उत्सुकता का दमन कर सकता हूँ।

शान्ता—महाराज, ईश्वर आपका भला करे। मैं आपकी उत्सुकता का बलिदान कराना नहीं चाहती। इस लिए मैं अपना हाल जितना कहना चाहती हूँ, कहती हूँ। ध्यान से सुनिये, मैं नामों के अतिरिक्त शेष सब हाल कहूँगी। मेरा नाम शान्ता है। मैं एक प्रसिद्ध वीर क्षत्रिय की पुत्री हूँ (उनका नाम नहीं बताऊँगी) पिता जी मेरा विवाह एक व्यक्ति से करना निश्चित कर चुके थे और मैं भी उन्हीं को अपना पति मान चुकी थी। अकस्मात् ऐसा हुआ कि मेरे भावी पति से मेरे पिता रुष्ट हो गए और मेरा विवाह कहीं और ठहराने लगे। जब मुझे मालूम हुआ तो मैं अपने पिता के पास गई

और उनसे कहा कि मैं अब दूसरे व्यक्ति से कदापि विवाह न करूँगी क्योंकि मैं उन्हें (अपने भावी पति को) मन से वर चुकी हूँ। अब यदि किसी और से विवाह करूँगी तो मुझे व्यभिचार का दोष लगेगा। मेरी बात सुनकर पिताजी मुझसे अत्यन्त ही रुष्ट हुए और मुझे दूसरे व्यक्ति से विवाह करने को ज़ोर देने लगे। मैंने उनसे बहुत कहा, परन्तु उन्होंने मेरी एक न मानी, अन्त को मैं अपना धर्म बचाने को वहाँ से भाग आई। मैं यह कहना भूल गई कि कुछ दिन पहले मैं अपने भावी पति से वाद-विवाद कर बैठी थी जिससे वे मर्माहत होकर चले गए थे। मेरे जीमें वाद विवाद करने का बड़ा ही खेद था। मैं अपने घर से जब चली तब अकेली थी, चारों ओर भयानक जंगल था, हर घड़ी जंगली जन्तुओं तथा लुटेरों का भय सताये रहता था। मैंने पिता के यहाँ शस्त्र चलाने में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। इस समय भी मैं सशस्त्र थी। दिन को मैं बराबर चलती और रात्रि को किसी वृक्ष पर विश्राम करती, इसी प्रकार मुझे बिना खाये पीये चलते-चलते कई दिन व्यतीत हो गये। एक रात्रि को वृक्ष पर बैठे-बैठे मैंने दूर पर अपने सामने कुछ प्रकाश देखा। मुझे निश्चय हो गया कि उस ओर कोई ग्राम अवश्य है। दूसरे दिन मैं प्रातःकाल ही उस ग्राम की ओर चली। वास्तव में वह एक ग्राम ही था। मैं जिस समय वहाँ पहुँची उस समय ग्राम-वासी सब अपने अपने कार्यों में लगे हुए थे। ग्राम-महिलायें पोखरे पर जल भर रही थीं। मैं भी उन्हीं में जा खड़ी हुई। वे सब अपना काम छोड़ मुझे देखने लगीं। सशस्त्र होने के कारण उन्हें मैं एक अद्भुत वस्तु ज्ञात होती थी। वे आपस में कुछ वार्तालाप करने लगीं, उसके पश्चात् उनमें से एक

वृद्धा मेरी ओर बढ़कर आई और मुझसे कहने लगी—बेटी, तुम कौन हो, इस प्रकार क्यों सशस्त्र घूमती-फिरती हो और इस ग्राम में तुम्हारा कैसे आना हुआ ? तुम्हारा नाम क्या है ? देखने में तो बड़े घर की ज्ञात होती हो।

मैं—बूढ़ी माता, मैं एक बहुत ही दीन अबला हूँ। आज तीन-चार दिन से जंगल जंगल मारी मारी फिर रही थी। अपनी रक्षा के लिए शस्त्र धारण कर रक्खे हैं, कल रात मैंने जंगल में इधर कुछ प्रकाश देखा, बस आज प्रातःकाल ही मैं इस प्रकाश की ओर चली आई। मेरा नाम शान्ता है। मैं इस समय आश्रय की प्रार्थना करती हूँ। यदि आपमें से कोई भी मुझे आश्रय देंगी तो मैं अत्यन्त ही अनुगृहीत होऊँगी।

वृद्धा ब्राह्मणी थी। उसका पुत्र आबाजी सोनीदेव महाराज शिवाजी की सेना में किसी उच्च पद पर था। वृद्धा अपने घर में अकेले ही रहती थी मैं उसके साथ रहने लगी। धीरे धीरे मैंने अपना सब हाल उससे कहा। उसने मेरे साथ सहानुभूति प्रकट की और अपने पुत्र के आने पर मेरी सहायता का वचन दिया। कुछ दिन बाद ही मैंने यह भी सुना कि मेरे भावी पति भी उन्हीं आबाजी की सेना में सैनिक हैं। बस, मैं इसी आशा में वहाँ रुक गई कि कदाचित् कभी प्राणेश के दर्शन हो जायँ। ग्राम में मेरी भाँति भाँति की बातें प्रचलित थीं। मैं ग्राम-ललनाओं में मिलती-जुलती न थी इस कारण मुझसे सभी द्वेष रखती थीं और मेरे विषय में जो मन में आता वही कहती थीं। मैं किसी की ओर ध्यान न देती हुई अपना कार्य करती और सहे जाती। मुझे वहाँ रहते

बहुत दिन बीत गये, बूढ़ी माता मुझसे बहुत ही स्नेह करने लगीं। एक दिन वह ग्राम में एक विवाह में गई थीं मैं घर पर अकेली ही थी कि द्वार पर किसी ने खटखटाया। मैंने पूछा, कौन है? आगन्तुक ने कहा कि मेरी बात शान्ता के अतिरिक्त और कोई नहीं सुन सकता। मैंने अपना परिचय दिया तब उस आगन्तुक ने कहा कि मेरे भावी पति युद्ध से लौटकर मुझसे मिलने आ रहे थे। राह में कुछ यवन सैनिकों ने धावा मारा। वे बहुत ही घायल हो गए हैं और उनके जीने की भी कोई आशा नहीं है। मैं यह सुनकर मूर्च्छित हो गई। जब मुझे चेत हुआ तो मैंने अपनेआपको उसी स्थान पर पाया जहाँ से आप मुझे लाये थे। वे तीनों यवन मुझसे मुसलमान होने को कहने लगे। प्रथम तो उन्होंने लोभ दिखाया परन्तु जब मैं अपने धर्म पर दृढ़ रही तो भाँति भाँति से धमकाया। मुझे क्रोध आ गया और मैंने कटार से उनपर आक्रमण किया। थोड़ी देर युद्ध करने के पश्चात् मैं बन्दी हो गई और दुष्टों ने मुझे जीता ही चिता पर रखकर अग्नि लगा दी। उसके पश्चात् सब आपको विदित ही है।

इतना कहकर शान्ता चुप हो गई। फिरंगजी बड़े ध्यान से उसकी बातें सुन रहे थे। जब शान्ता चुप हो गई तब वे बोले—यथार्थ में शान्ताजी, आपकी कथा बड़ी चित्ताकर्षक है। (मनोरमा से) देखो प्राणेश्वरी, इन्होंने कैसे कैसे कष्ट उठाये हैं? अब इन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देना चाहिये। (फिर शान्ता से) मैंने आबाजी सोनीदेव का बड़ा ही नाम सुन रक्खा है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि एक बार उनसे रणभूमि में मिलूँ। यदि आपके भावी पति भी उनके साथ हुए तो मैं उनसे मिलकर अपनेआपको

भाग्यशाली समझूँगा। यदि आप कृपया उनका नाम बता देतीं तो मैं अपने को कृतार्थ समझता।

शान्ता का मुख लज्जा से रक्त-वर्ण हो गया। वह सिर नीचा करके मौन हो गई। इस पर मनोरमाजी बोलीं—यदि शान्ताजी, मुझे आज्ञा दें तो मैं उस भाग्यशाली वीर पुरुष का नाम बता दूँ।

यह सुनकर शान्ता ने एक विचित्र दृष्टि से उनकी ओर देखा। मनोरमाजी उनका अभिप्राय समझकर फिर कहने लगीं—यह मत समझियेगा कि मैं मिथ्याभाषण कर रही हूँ या यों ही तुक मिलाती हूँ। नहीं, मैंने आपको ज्वरावस्था में बहुधा उनका नाम लेते सुना है।

शान्ता ने सशंक दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए कहा—क्या मैं ज्वर की अवस्था में अधिक बका करती थी? क्या मैंने और भी कोई गुप्त बात उस अवस्था में मुँह से निकाल दी है?

मनोरमा—अवश्य ही आप ज्वरावस्था में अधिक बकती थीं। परन्तु मेरे विचार में इसके अतिरिक्त और कोई गुप्त बात आपने नहीं कही। हाँ, यदि कही भी होती तो भी वह और कोई न जानने पाता। आप देखती हैं कि मैं बिना आपकी आज्ञा के आपका भेद अपने स्वामी से भी कहने को तैयार नहीं।

शान्ता ने फिर एक कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से मनोरमाजी की ओर देखा और फिर बोली—मुझे उनका नाम बताने में कोई भी आपत्ति नहीं है। आप नाम बता दीजिये परन्तु मैं इसी लिए नहीं कहती थी कि न-जाने वह मुझे भूल गये हैं या अब भी याद करते हैं क्योंकि मैं उनसे इतनी दूर हो गई हूँ।

मनोरमा—आप घबरायें नहीं, हम लोग भरसक प्रयत्न करेंगे और उन्हें आपसे मिला देंगे। (फिरंगजी से) प्राणेश, उस वीर महापुरुष का नाम माधवराव हवलदार है जिसकी वीर-गाथा देश-देशान्तरों में प्रसिद्ध है।

फिरंगजी मानो चौंक उठे। माधव का नाम वह बहुत सुन चुके थे और उसकी वीरता की बातें सुनकर उनसे मिलने के लिए लालायित हो चुके थे। इस समय यदि वह उन्हें मिल सकते तो उन्हें हृदय से लगाकर ऐसी सती स्त्री के प्रेम-पात्र होने की बधाई देते। कुछ देर ध्यान से सोचने के पश्चात् वे शान्ता से कहने लगे—बहन शान्ता आज से तुम मेरी बहन हुई। मैं शक्तिभर आपके पति के खोजने का प्रयत्न करूँगा और यदि ईश्वर की कृपा हुई तो आपकी मनोकामना शीघ्र ही पूर्ण होगी; परन्तु आजकल शिवाजी की वक्र-दृष्टि मेरी ओर है। इस कारण यदि आपके कार्य में कुछ विलम्ब भी हो जाय तो आपको रंज न होना चाहिये। जब तक हम उन्हें ढूँढ़ निकालने में कृतकार्य न हों उस समय तक आप यहाँ को अपना ही गृह समझकर आनन्द से रहिये।

शान्ता ने फिरंगजी की ओर बड़ी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा और मौन हो गई। फिरंगजी उस समय बिदा माँगकर चले गये। शान्ता फिर लेट गई और भाँति भाँति के विचार करके समय बिताने लगी। मध्याह्न के भोजन के उपरान्त फिर फिरंगजी उसके पास आये और उसकी शय्या के पास बैठकर नाना प्रकार की बातें करने लगे। जिस स्त्री की उन्होंने अपनी जान पर खेलकर रक्षा की थी उसको इस प्रकार रोग-मुक्त देखकर उनके आनन्द का पारावार न रहा।

इसी प्रकार फिरुंगजी नित्यप्रति शान्ता के पास नियम से आते और इधर-उधर की बातें करके उसका मन बहलाते। अब शान्ता के शरीर में धीरे धीरे बल आने लगा। वह अब केवल तकियों के सहारे बैठी ही नहीं रहती वरन् अब मनोरमाजी और फिरुंगजी का सहारा लेकर कुछ दूर टहल भी लेती है। इस समय शान्ता हर प्रकार से प्रसन्न है। केवल उसे एक यही मानसिक दुख है कि न-जाने माधव उसे याद भी करते होंगे या नहीं। कदाचित् याद भी आती होगी तो किस रूप में? उन्हें मेरी वह निष्ठुरता भी अवश्य ही याद आती होगी। क्या कभी मुझे उनसे क्षमा माँगने का सौभाग्य प्राप्त होगा? क्या कभी वे मुझे क्षमा करेंगे? ऐसे ही विचार थे जो फिरुंगजी या मनोरमाजी की अनुपस्थिति में शान्ता के हृदय में उठा करते थे परन्तु जब वे दोनों या उनमें से कोई भी उसके निकट होता तो वह अपना समस्त दुख भूल जाती। वह सुखी अवश्य थी, परन्तु क्या वह सुख सुख था? इसी प्रकार फिरुंगीजी को आये अब एक सप्ताह व्यतीत हो गया। शान्ता ने अब पूर्णरूप से शक्ति-लाभ कर लिया है। अब वह बहुधा सन्ध्या-समय उद्यान की सैर करने को जाती है। फिरुंगजी के सब नौकर-चाकर उसके साथ घर के जैसा ही व्यवहार करते थे।

आज भी सन्ध्या का समय है। सूर्य भगवान् धीरे धीरे अस्ताचल की ओर पदार्पण कर रहे हैं। उनकी अन्तिम किरणें उद्यान के वृक्षों की ऊँची ऊँची चोटियों पर पड़कर उन्हें स्वर्ण-वर्ण कर रही हैं। उद्यान में चारों ओर हरी हरी दूब हरी मख़मल के फ़र्श का आभास करा रही है। वृक्ष मंद मंद शीतल समीर के झोकों से झूम रहे हैं और

अपनी सुगन्धि से सारे उद्यान को सुरभित कर रहे हैं। उद्यान के बीचोबीच एक सरोवर है। उसके मोती के सदृश निर्मल जल में भाँति भाँति की मछलियाँ दर्शक के चित्त को मोहे लेती हैं। सरोवर के चारों ओर चार सुन्दर पाषाण-प्रतिमायें सरोवर की शोभा बढ़ा रही हैं। सरोवर के सामने ही लता-कुंज है जिसमें कई फ़ौवारे चल रहे हैं। पाठक, वह देखिये जो पूर्व की ओर फौवारे के पास बैठक बनी है, उस पर कौन बैठी है, देखने से तो यह भी पत्थर की मूर्त्तिसी ही ज्ञात होती है, परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो उसका ऊपर-नीचे होता हुआ वक्षस्थल उसके जीवित होने का परिचय दे रहा है। पाठक, आपने पहचाना यह कौन है? लीजिये, ध्यान से देखिये, यही आपकी शान्ता यहाँ ध्यानावस्थित बैठी है। ओ हो, आज तो यह इस लता-कुंज में बैठी साक्षात् वन-देवीसी प्रतीत हो रही है। उसके मुख की ज्योति से उस कुञ्ज मे एक प्रकार का उजालासा हो रहा है। देखिये, वह चौंक पड़ी। चौंकी क्यों? आहा, अब समझ में आया। वह देखिये सरोवर पर मनोरमाजी कई सखियों के साथ टहल रही हैं। उन्हीं के वार्तालाप का शब्द सुनकर ही चौंकी होगी। हमारा अनुमान ठीक निकला। देखिये वह अपने स्थान से उतर आई और सरोवर की ओर को चल दी। अब देखिये, वह सरोवर के समीप पहुँच गई। अहा, मनोरमाजी ने भी उसे देख लिया। वह देखिये दौड़कर उसे हृदय से लगा लिया। अब तो दोनों आपस में वार्तालाप करने लग गईं। आइये पाठकगण, हम भी इस वृक्ष की आड़ से उनकी बातें सुनें परन्तु सावधान! उन्हें हमारे उपस्थित होने का ज्ञान न हो।

मनोरमा—अरे तुम यहाँ थीं बहन! हम लोग तुम्हें सारे जगहों में खोज आये। कहो अब चित्त कैसा है?

शान्ता—आपके आशीर्वाद से अच्छा है बहन! आज मैं कुछ देर आपकी बाट देखती रही परन्तु जब आप नहीं आईं तो अन्त को हारकर मैं अकेली ही चली आई। कहिये, आप अकेली ही आईं, भाई साहब नहीं आये?

मनोरमा—उन्हीं के कारण तो इतनी देर हो गई, नहीं तो मैं कभी की आ गई होती। कुछ आवश्यक कार्य था उसे समाप्त करके आना चाहते थे। मुझे भी बैठा लिया जब मैं बैठे बैठे उकता गई तो मैंने कहा कि आप कार्य समाप्त करके आवें मैं तब तक शान्ताजी के पास बैठकर वार्तालाप करूँगी। वह अकेली घबरा रही होंगी तब कहीं आने दिया।

शान्ता—आने तो दो, मैं उनसे कहूँगी कि आप भी नहीं आये और भाभी को भी रोक लिया। ख़ूब!! हम अकेले पड़े पड़े सड़ा किये। यह भी कोई भलमनसाहत है?

मनोरमाजी कुछ कहना ही चाहती थीं कि पीछे से किसी ने कहा—किसे दोष लगाया जा रहा है? किसमें भलमनसाहत नहीं है?

शान्ता यह सुनते ही लज्जा से रक्त-वर्ण हो गई। फिरंगजी ने बैठते बैठते कहा—क्यों शान्ताजी, कौन भलामानस नहीं है? हम भी तो सुन लें या सब बातों के सुनने का आपकी भाभी को ही अधिकार है?

शान्ता फिर भी मौन रही परन्तु मनोरमाजी बोलीं—आपकी ही बात हो रही थी। आपने जो मुझे रोक लिया तो इन्हें इतना समय अकेले बिताना पड़ा इस कारण आपके बर्ताव की कठिन समालोचना कर रही थीं।

शान्ता ने मनोरमा के धीरे से चुटकी काट लिया। फिरंगजी बोले—लो, हमें क्या मालूम था कि अपराधी का स्थान हमें ही मिलेगा? अच्छा, अपराधी अपना अपराध स्वीकार करता है। न्यायाधीश महाशय को चाहिये कि बादी को जिता दे और अपराधी को दंड दे। कहिये, अपराधी को दंड मिलना है?

मनोरमा—अपराधी अपना अपराध स्वीकार करता है। इससे उस पर दया करके न्यायाधीश महाशय उसे मुक्त करते हैं और आगे को ऐसा अपराध न करने को चिताये देते हैं।

इस पर सब खिलखिलाकर हँस पड़े। न जाने और क्या क्या बातें होतीं परन्तु दैव को उनका यह विनोद प्रियकर नहीं हुआ उसने अपना दूत भेजकर उनके रंग में भंग कर दिया। हँसी गम्भीरता से बदल गई। एक बाँदी ने आकर समाचार दिया कि महाराज! दुर्ग से एक दूत आया है और श्रीमान् से तुरन्त ही मिलना चाहता है। फिरंगजी तुरन्त ही उठकर मंत्रणा-भवन की ओर चल दिये। दूत वहाँ पहले ही से इनकी बाट जोह रहा था। इनके पहुँचते ही उसने इनका यथाविधि सत्कार किया। इन्होंने आशीर्वाद देकर उससे पूछा—कहो क्या समाचार लाये हो?

दूत—अन्नदाताजी, मुझे सेनापति मूलजी ने आपकी सेवा में भेजा है और मुझे आज्ञा दी है कि मैं आपसे निवेदन करूँ कि संवाद आया है कि शिवाजी हमारे दुर्ग पर आक्रमण करने को अपनी सेना एकत्रित कर रहा है और शीघ्र ही आज-कल में आक्रमण करनेवाला है। सो हे अन्नदाताजी, आप भी अब दुर्ग में पहुँचकर अपनी सेना का उत्साह बढ़ाइये। यद्यपि दुर्ग की रक्षार्थ हम सब प्राण

देने को प्रस्तुत हैं परन्तु आपका पीठ पर होना हमारे लिए और ही अर्थ रखता है।

फिरुंगजी—दूत, जाओ विश्राम करो। मैं तुरन्त ही दुर्ग की ओर यात्रा करता हूँ। हाँ, देखो द्वारपाल से कह देना कि वह मेरा घोड़ा मँगाये।

दूत विदा होकर चला गया। फिरुंगजी कुछ देर तक बैठे सोचते रहे फिर उठकर उसी स्थान पर आ गये जहाँ शान्ता इत्यादि को छोड़ गये थे। वे सब बड़ी उत्सुकता से इनके आने की बाट जोह रही थीं ज्यों ही यह पहुँचे कि शान्ता ने इनसे पूछा—कहिये, कुशल तो है न, क्या समाचार है?

फिरुंगजी—हाँ, वैसे तो सब कुशल ही समझो परन्तु मुझे तुरन्त ही आप लोगों का साथ छोड़कर जाना पड़ेगा क्योंकि शिवाजी की दृष्टि अब मेरी ओर हुई है। वह आजकल में ही हम पर आक्रमण करनेवाले हैं। दूत इस समय यही समाचार लेकर आया था।

शान्ता—ईश्वर आपकी रक्षा करे, जाइये और युद्ध से निर्विघ्न लौट आइये। मेरी भी इच्छा युद्ध में जाने की है, यदि आप आज्ञा दें तो मैं भी आपके साथ चलूँ?

फिरुंगजी—नहीं, अभी आप अत्यन्त दुर्बल हो रही हैं। ऐसी अवस्था में मैं आपको युद्ध में जाने की सलाह नहीं दे सकता। आप यहाँ आनन्द से रहिये, मैं युद्ध से शीघ्र ही लौट आऊँगा और यदि न आ सका तो समझ लेना कि अब फिरुंगजी इस संसार में नहीं हैं।

मनोरमा—प्राणेश, ऐसा न कहिये। ईश्वर आपकी रक्षा करने वाले हैं। वे रणभूमि में आपका बाल भी बाँका नहीं होने देंगे।

फिरंगजी—ख़ैर, इस समय तो यही अंतिम बिदाई है।

इतने में दूत ने आकर कहा कि महाराज घोड़ा तैयार है और द्वार पर आपकी बाट जोह रहा है। फिरंगजी चलने लगे परन्तु शान्ता ने उन्हें रोककर कहा—भाई, मैं आपके साथ युद्ध में अवश्य ही जाऊँगी। मेरा मन मुझे इस बात की प्रेरणा करता है कि आपको युद्ध में मेरी आवश्यकता होगी।

मनोरमाजी भी युद्ध में जाने की हठ करने लगीं। अंत को लाचार होकर फिरंगजी ने दोनों को चलने की अनुमति दे दी। थोड़ी देर बाद तीन अश्वारोही अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित झिलमटोप और जिरह-बख़्तर पहने बीजापुर से चाकन की ओर शीघ्रता के साथ चल दिये।

एकादश परिच्छेद

पुरंधर-दुर्ग में विजयोत्सव बड़े धूमधाम के साथ मनाया जा रहा है। सारी पठान और मरहठा सेना मनमाना आनन्द कर रही है। स्थान स्थान पर नौबत बज रही है। सब बाज़ारों में भाँति भाँति के खेल-तमाशे हो रहे हैं। सैनिकगण टोलियाँ बाँधे नागरिकों के उत्सव का आनन्द लेते फिर रहे हैं। सारा पुरन्धुर मारे शोभा के जगमगा रहा है। परन्तु इतने उत्सव होते हुए भी सारी सजावट और वैभव में कृत्रिमता की गन्ध आती है। पाठक, आइये इसका कारण हम आपको क़िलेदार के महलों में चलकर दिखायें। वह देखिये, सारे उत्सव की जान नवाब मीरखाँ और तुराबखाँ दरबार

से लौटकर उदास बैठे हैं और अपने भाग्य को रो रहे हैं। वह देखिये, दोनों धीरे धीरे कुछ आपस में बातचीत कर रहे हैं।

तुराबखाँ—भाई मीरखाँ, तुमने इन मरहठों की दग़ाबाज़ी (विश्वासघात) देखी! मैंने तो पहले ही समझा दिया था और जमशेद तो मरते मरते यही कह गया था। तुमने किसी की न मानी और नादानी (मूर्खता) कर बैठे। अब देख लो, कुछ भी हाथ न आया और ग़ुलामी (दासता) मिली मुनाफ़े में। इससे तो सुलतान की ही क़िलेदारी ग़नीमत । वहाँ कोई खटका तो नहीं था; मगर अब तो यह मरहठे कोई ज़रासी बदउनमानी (चूक) देखी और फ़ौरन् क़िला ज़ब्त। वह तो उनकी यह भी मिहरबानी थी कि अब की ही क़िले पर क़ब्ज़ा न जमाकर हमीं पर रहने दिया वरना उनसे कुछ बईद न था।

मीरख़ाँ—भाई, मुझे और क्यों शरमिन्दा करते हो? मैं अपने कार से खुद ही नादिम (लज्जित) हूँ। खुदा गवाह है मैं इन मरहठों को ऐसा मक्कार हरगिज़ न समझता था। मुझे इनकी इस वादाख़िलाफ़ी (भ्रष्ट प्रतिज्ञा) पर सख्त गुस्सा आ रहा है। क्या करूँ इस वक्त सिवा ख़ामोशी के कुछ चारा नहीं है वरना मैं इन्हें इनकी बदमाशी का मज़ा चखा देता।

तुराबखाँ—भाई, सच पूछो तो यह हिन्दू लोगों का बर्ताव आइने में हमारे ही बर्ताव का अक्स है। वरना यह हिन्दू तो बड़े ही सीधे होते थे, झूठ बोलना हराम समझते थे; मगर हम लोगों ने इनके साथ दग़ा और फ़रेब कर करके इन्हें फ़रेब करना सिखाया है। अब अगर वही बर्ताव वह

हमारे साथ करते हैं तो उसमें उनका क्या क़ुसूर ! ख़ैर, अब इस ज़िक्र से क्या फ़ायदा, अब तो फूट का फल भरपूर मिल गया। यह शुक्र भेजो कि खुदावन्द ताला ने सिर कन्धे पर रहने दिया।

पाठकगण, इन्हें यों ही रोने-धोने दीजिये, आइये चलकर देखें कि मरहठों के डेरे में क्या हो रहा है। वह देखिये मनसबदार आबाजी दुर्ग के एक कमरे में खाना खाकर विश्राम कर रहे हैं। पास ही माधव खड़े हैं। दोनों आपस में कुछ बार्तालाप कर रहे हैं।

आबाजी—माधव, मैं आज तुम्हारी वीरता देखकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ हूं। सच पूछो तो यह आज की विजय और मेरा जीवन सब तुम्हारी ही वीरता के कारण है। यदि आज तुम समय पर आकर शत्रु का हाथ न पकड़ लेते तो मैं मर ही चुका था।

माधव—महाराज, आप इस प्रकार की बातें करके मुझे लज्जित मत कीजिये। मैं आपका आजन्म ऋणी रहूँगा। आपने मुझे पशु से मनुष्य बनाया है। आप मेरे गुरु हैं। ईश्वर आपको चिरायु करे। जहाँ आपका एक बूँद भी पसीना गिरे वहाँ मैं हज़ारों सिर कटाना भी उसके तुल्य नहीं समझता।

आबाजी—यह नम्रता तुम्हें ही शोभा देती है माधव ! परन्तु यथार्थ बात वही है जो मैंने कही। मैं तुम्हें महाराज शिवाजी से शीघ्र ही सम्मानित कराऊँगा। ऐसे ही वीरों के होने से हमारी सेना किसी से भी नहीं डरती।

माधव—महाराज, मैं आपके प्रसन्न होने से ही सम्मानित हो गया। आप तो मेरी बड़ाई करके मेरा उत्साह बढ़ा-

रहे हैं नहीं तो मैंने कोई भी ऐसा गौरव का कार्य नहीं किया है। परन्तु महाराज, आपने मेरी एक लालसा पूरी कराने का वचन दिया था। आपने कहा था कि आपकी माताजी मुझ अनाथ को पुत्ररूप में ग्रहण कर सनाथ करेंगी। प्रभो, बतलाइये कब उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होगा।

आबाजी—माधव, मुझे अपने वचन का भली प्रकार स्मरण है। यह मत समझना कि मैं भूल गया हूँ। नहीं, मुझे तुमसे अधिक उसका ध्यान है। मैं भी प्यासे चातक की भाँति उस दिन की बाट जोह रहा हूँ जब उनका दर्शनरूपी स्वाति-जल मेरी प्यास बुझावेगा। परन्तु याद रक्खो, सामने स्वामी के प्रति कर्तव्य है। कर्तव्य से बढ़कर संसार में कोई भी वस्तु नहीं है। कर्तव्य के आगे सब कुछ हेच है। यह मत समझना कि मुझमें मातृ-भक्ति नहीं है, अवश्य है; किन्तु वह मुझे कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं करती वरन् कर्तव्य पालन करने को मुझे उत्साहित करती है। रणक्षेत्र में माता का प्रेम ढाल बनकर मेरी रक्षा करता है। ईश्वर, वह दिन लावें जब मैं उनके दर्शन कर सकूँ।

माधव—तो स्वामी, इस समय क्या आज्ञा होती है। क्या इस समय किसी और दुर्ग को विजय करने का ध्यान है अथवा महाराज शिवाजी का कुछ और आदेश है? शीघ्र कहिये। स्वामी का कार्य सम्पादन करने को मेरी भुजायें फड़क रही हैं।

आबाजी—हाँ, हमें इस समय कुछ ऐसा ही कार्य करना है। पिछले दिनों जब मैं महाराज के पास था उस समय बातों ही बातों में उन्होंने मुझसे 'कल्याण'-सूबे को विजय करने

का विचार प्रकट किया था। मैंने उस समय उन्हें वचन दिया था कि मैं शीघ्र ही कल्याण विजय करूँगा बिना इस कार्य को किये मैं घर न जाऊँगा। अब यदि मैं इस समय आप लोगों की सहायता से कल्याण को महाराज शिवाजी के अधीन कर सकूँगा तभी मेरा संकल्प पूरा होगा और मैं प्रसन्नतापूर्वक श्रीपूज्य माताजी के चरणों की रज अपने मस्तक पर लगाऊँगा।

माधव—तो महाराज, फिर इस कार्य में विलम्ब क्यों है, शुभस्य शीघ्रम्। ऐसे कार्य में तो शीघ्रता ही करना उचित है। ईश्वर की कृपा से इस समय हमारी सेना विजयोल्लास से उत्साहित हो रही है। प्रभु का संकल्प अवश्य ही पूर्ण करायेगी।

आबाजी—उतावली नहीं माधव! सब कार्य धीरे धीरे होने दो। कुल सेना में कूच की घोषणा कर दो; परन्तु स्थान अभी गुप्त ही रक्खा जाय। सेना के तैयार हो जाने पर कूच की आज्ञा दी जायगी। यदि इस समय ही स्थान बता दोगे तो शत्रु को संवाद मिल जाने का भय है और इससे व्यर्थ सेना नष्ट होने की सम्भावना है।

माधव—जो महाराज की आज्ञा।

आबाजी—अच्छा, अब तुम जाओ और बड़ी सावधानी से कार्य करो।

माधव मनसबदार की अभ्यर्थना करके चल दिये और उन्होंने महाराष्ट्र सेना को कूच के लिए तैयार होने की आज्ञा दे दी। उसी समय कूच का डंका बजा दिया गया। जो जहाँ जैसे बैठा था वैसे ही उठ दौड़ा और तुरन्त कूच को तैयार हो गया। थोड़ी ही देर में सारी मरहठा सेना तैयार

हो गई और आज्ञा की बाट देखने लगी। उसी समय आबाजी अपने डेरे से बाहर निकल आये और कूच की आज्ञा दी। सेना तुरन्त चल पड़ी। सरदारगण उन्हें कल्याण की ओर ले चले। गुप्तचर भेद लेने को आगे ही भेज दिये गये थे।

आबाजी ने सेना को तीन भागों में विभाजित किया। एक भाग सूबे में अधिकार जमाने को भेज दिया गया। दूसरे भाग को माधव के अधिकार में पूर्व की ओर से और तीसरे को अपने अधीन पश्चिम की ओर से कल्याण के सूबेदार के दुर्ग पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। तीनों भाग तीनों ओर को चले गये। माधव अपनी सेना बढ़ाये कई घाटी और पहाड़ लाँघते दुर्ग के पूर्व पहुँच गये और शान्ति के साथ संकेत की बाट देखने लगे। एकाएक सुनसान रात्रि की शान्ति को भंग करनेवाला एक बड़ा भयानक शब्द हुआ। साथ ही "हर हर महादेव" की ध्वनि से सारा वायु-मण्डल गूँज उठा। कल्याण-दुर्ग पर एकसाथ दो ओर से आक्रमण हुआ।

द्वादश परिच्छेद

रात्रि का समय है, आकाश में तारागण अपना क्षीण प्रकाश डालकर रात्रि के उस अन्धकार को दूर करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है, परन्तु कल्याण-दुर्ग में इस समय भी दिन कासा प्रकाश हो रहा है। सारा दुर्ग जगमग जगमग कर रहा है। जिस

ओर दृष्टि उठाकर देखा जाय उसी ओर दीप-शिखा ही दीप-शिखा दिखाई देती थी। जिसे देखिये वह सूबेदार के महलों की ही ओर चला जा रहा है। यद्यपि अभी सन्ध्या हुए कुछ ही देर हुई है तो भी सड़कों पर कोई भी मनुष्य दिखाई नहीं देता। बाज़ार बंद है। इस समय सब नागरिक सूबेदार के दीवानख़ाने में जलसा देख रहे हैं। आइये पाठक, हम भी तनिक दीवानख़ाने तक हो आवें। पाठक, देखिए वह सामने दीवानख़ाना है। अल्लाह, आज तो इसकी शोभा बड़ी ही विचित्र है। चारों ओर प्रकाश के कारण दिन कासा आभास हो रहा है। वह देखिए, सामने मसनद पर कल्याण के सूबेदार मौलाना मुहम्मद अहमद विराज रहे हैं। उनके दोनों ओर प्रजा के लोग और सरदारगण अपने अपने पदानुसार बैठे उत्सव का आनन्द ले रहे हैं। मुहफिल जम रही है। बीचोबीच में एक गायिका खड़ी नाच-गाकर दर्शकों का चित्त लुभा रही है। सब दर्शकगण "वाह वाह क्या कहना है, सुभान-अल्लाह" कह कहकर उसका उत्साह बढ़ा रहे हैं। गायिका भी झूम झूमकर प्रेम से निम्नलिखित गीत गा रही है—

गाना

बुलबुल को गुल मुबारक, गुल को चमन मुबारक,
हम आशिक़ों को अपना प्यारा सजन मुबारक।
गुंचे हमारे दिल के इस बाग़ में खिले हैं,
देखा जो शम्स की जा अहमद सजन मुबारक।
हमें ख़ाक से उठाकर जिसने गले लगाया,
फूले-फले जहाँ में अहमद सजन मुबारक।

एक मुसाहब—वाह वाह, क्या कहना है! अल्लाह, कमाल कर दिया!

दूसरा मुसाहब—हज़रत इमाम की क़सम, बस बिहिश्त का मज़ा आ रहा है। हमारे हुज़ूर में तो दो दो वली-अल्लाह शामिल हैं फिर क्यों न तारीफ़ के क़ाबिल हों। खुदाया हमेशा इन्हें जिन्नत बख्शे और शाद रक्खे।

मुहम्मद अहमद—(एक मुसाहब से) सूफ़ीजी, इसे इनाम में दो सौ मुहरें दे दो। (फिर गायिका से) बीबीजान, कोई क़ौवाली सुनाओ।

गायिका—बहुत खूब खुदावन्द! खुदा हुज़ूर को सलामत ख़ुशो ख़ुर्रम रक्खे।

मुहम्मद—हाँ तो फिर छिड़े तान!

समाजियों ने फिर गत छेड़ी और गायिका ने गाना शुरू किया—

गाना

अरे क्यों होके चले आये दरबारे मुहम्मद से;
मरक़द से फ़रिश्तो तुम चुपचाप चले जाओ,
तुमने जो मुझे छेड़ा कह दूँगा मुहम्मद से।
हमने तो मुहम्मद के रौज़े में खुदा देखा,
अल्लाह की आवाज़ें आईं इसी गुम्बद से।

मुहम्मद—सुभान-अल्लाह, क्या कहा है। अहा हा, अहा हा!

इसी समय भीड़ में कुछ खलबलीसी मच गई और एक आदमी भीड़ चीरकर अंदर आया। उसे देखकर मुहम्मद अहमद वग़ैरह सब चिल्ला उठे—क्या है खुदादादखाँ, इस वक्त इतना गोलमाल करके सब मज़ा किरकिरा क्यों कर दिया?

खुदादाद—(दम लेते हुए) हुज़ूर, ग़ज़ब हो गया। ऐसा

मालूम होता है कि मरहठों ने क़िले पर हमला किया है। सब आदमी अचेत हैं। बहुतसे यहाँ हैं। न-जाने आज क़िले की हिफ़ाज़त कैसे होगी ?

इस ख़बर को सुनते ही सारी महफ़िल में भगदर पड़ गई। क़िलेदार भी अपनी तलवार लेकर खुदादाद के पीछे पीछे क़िले की दीवार की ओर को लपका। इसी समय दुर्ग की दीवार पर से तोप का बड़ा भयानक शब्द उस सुनसान रात्रि में गूँज उठा और साथ ही "हरहर महादेव, अल्लाह" इत्यादि से सारी दिशायें गूँजने लगीं। यद्यपि किले की सेना पर अकस्मात् ही आक्रमण हुआ था परन्तु वे बड़ी वीरता और साहस से लड़ने लगे। मरहठा वीर भी कूद कूदकर दुर्ग की भीत पर चढ़ने की चेष्टा करने लगे। भीत पर से पत्थर, गर्म पानी इत्यादि से उनकी चेष्टाओं का उत्तर दिया जाने लगा। थोड़ी देर में लोगों के ढेर लगने लगे। पठान लोग भी बड़े वीर थे बराबर उत्साह से लड़ते गये। मौलाना मुहम्मद अहमद चारों ओर घूम घूमकर उनका उत्साह दुगना करने लगे। इसी समय दुर्ग के पूर्व की ओर से "हरहर महादेव" की आवाज़ आई। कुछ सैनिकों ने आकर ख़बर दी कि मरहठा सेना पूर्व की ओर से दुर्ग में घुस आई है। पश्चिम की ओर धावा होने से सबका ध्यान उसी ओर था। किसी ने पूर्व की ओर का ख़याल न किया। मरहठों ने मौक़ा पाकर वहाँ के प्रहरीगणों को मार डाला और उधर से घुस आये। इस ख़बर को सुनते ही मौलाना मुहम्मद पागल-सरीखे हो गये और खड्ग लेकर पूर्व की ओर झपटे। उनके आदमियों ने भी उनका साथ दिया। माधव अपना दल लेकर दुर्ग के अंदर आ गये थे। इस छोटीसी पठान सेना ने

उन पर आक्रमण किया। लड़ाई होने लगी। परन्तु एक की दवा दो और दो की दवा चार होते हैं। अन्त को बेचारे सब एक एक करके वीरगति को प्राप्त हुए। बेचारे मौलाना जब अकेले रह गये तब पागल की भाँति चिल्लाने लगे—मुझे कोई क़त्ल कर दो मुझे कोई क़त्ल कर दो जो कोई मुझे इस वक़्त क़त्ल करेगा उसका मैं बड़ा ही एहसानमन्द हूँगा। या खुदा, मेरी क़िस्मत में यह दिन भी देखना बदा था।

बेचारे कितना ही चिल्लाये परन्तु किसी ने उनको क़त्ल नहीं किया अंत को माधव ने उन्हें बंदी करके बंदीगृह में भेज दिया। यह समाचार जब पश्चिम ओर की सेना में पहुँचा तो सेना ने शस्त्र डाल दिये। फाटक खोल दिया गया और आबाजी अपनी सेनासहित विजय-पताका उड़ाते अन्दर आ पहुँचे। पठान सैनिकगण बंदी करके कारागार भेज दिये गये। माधव को आबाजी ने गले लगा लिया। इसी समय सेना का तीसरा भाग भी अधिकार जमाकर आ गया। दुर्ग में सब स्थानों पर मरहठा सैनिकों का पहरा बैठा दिया गया। कल्याण पर मरहठों की पताका फहराने लगी।

संसार बड़ा ही परिवर्तनशील है। किसी को यहाँ एक पल का भी पता नहीं। नहीं कह सकते कि पल में क्या से क्या हो जाता है। कौन जानता है कि आज हम यहाँ आनन्द से बैठे हैं तो कल क्या होगा। थोड़ा ही समय पहले मौलाना मुहम्मद अहमद कल्याण के सूबेदार थे। आनन्द से भोग-विलास में समय कटता था। किसे ज्ञात था कि प्रातःकाल होने के पूर्व ही उनका वह अधिकार छिन जायगा और वह हथकड़ी-बेड़ी से जकड़े जाकर उसी बंदी-गृह में डाल दिये जायँगे जहाँ कभी अनेकों मनुष्य उनकी आज्ञा से डाल दिये

जाते थे। एक समय वह था कि उनका तनिकसा संकेत पाते ही सहस्रों अपराधी मुक्त कर दिये जाते थे आज वह समय है कि हज़ार चेष्टा करने पर भी वह अपनेआपको ही मुक्त नहीं कर सकते। ईश्वर तेरी गति अपरम्पार है। तू किस समय क्या करनेवाला है, तू ही जाने।

मरहठा सेना युद्ध की थकान मिटा रही है। प्रहरीगणों और नगर के कुत्तों के अतिरिक्त कोई भी नहीं जाग रहा है। हाँ, कभी कभी शृगालों के किटकिटाने का शब्द अवश्य ही सुनाई दे जाता है। वे लोग भरपेट मांस खा खाकर भी लोथों पर ही किटकिटा रहे हैं और आपस में युद्ध कर रहे हैं। माधव दुर्ग के एक कमरे में सो रहे हैं। युद्ध में अधिक परिश्रम के कारण थक जाने से उन्हें लेटते ही निद्रा आ गई परन्तु थोड़ी ही देर सुख से सोने पाये होंगे कि प्रगाढ़ निद्रा तन्द्रा को अपना राज्य देकर बिदा हो गई। तन्द्रा ने अधिकार पाते ही उनके मस्तिष्क को ले जाकर स्वप्न-राज्य में खड़ा कर दिया। वे देखने लगे कि मानो बड़ा भारी युद्ध हो रहा है। युद्ध यवनों से न होकर मरहठों से ही हो रहा है। दोनों ओर के योद्धा अपना अपना रण-कौशल दिखाने पर तुले हुए हैं। यह भी घमसान लड़ाई के मध्य आलाजी के शरीररक्षक के रूप में युद्ध कर रहे हैं। युद्ध करते करते यह दोनों एक सुनसान घाटी की ओर पहुँचे। माधव ने देखा कि उस घाटी पर रक्त से लिखा हुआ है "मृत्यु की भयानक घाटी।" यह चौंक पड़े शब्द विद्युत्-प्रकाश की भाँति चमक रहे थे। इन्होंने और भी देखा कि एक भयानक मूर्त्ति जिसे इन्होंनेस्वयं मृत्यु ही अनुमान किया। हँसकर इन्हें अपनी ओर बुला रही है। इन्होंने घूमकर

आबाजी की ओर देखा वह उनको ओर देखकर हँस रहे थे। इन्हें अपनी ओर देखते देखते बोले—माधव, क्या सोच रहे हो। देखो हम दोनों युद्ध-भूमि से छोड़कर कैसे रमणीक स्थान में भाग आये हैं और इस पर यह सुन्दरी हमें कितने प्रेम से बुला रही है। किसी के आदर देने को निदराना वीरों का काम नहीं। मैं तो इस सुन्दरी के पास जाता हूँ। (घाटी की ओर देखकर) आता हूँ सुन्दरी !

माधव ने घूमकर देखा तो वही विकराल मूर्त्ति उन्हें देखकर हँस रही थी। इन्होंने आबाजी को रोकना चाहा पर वे उसकी ओर बढ़ गये। इन्होंने रोकने की बड़ी चेष्टा की पर व्यर्थ ! वे दौड़कर घाटी में घुस गये। माधव ने भी उनके पीछे दौड़ना चाहा पर घाटी दृष्टि से ओझल हो गई। इन्हें ऐसा ज्ञात हुआ मानो यह किसी की गोद में सिर रक्खे रो रहे हैं। फिर इन्हें शब्द सुनाई दिये—"बेटा रो मत, तू ही मेरा बेटा है।" इन्होंने ऊपर दृष्टि उठाकर देखा तो एक वृद्धा की गोद में अपने को पड़ा पाया। बूढ़ी उनकी माँ नहीं थी परन्तु इन्हें वह अपनी माँ कीसी जान पड़ी। यह उसकी गोद में मुँह छिपाकर फूट फूटकर रोने लगे। अपनी सिसकियों के शब्द से ही इनकी निद्रा भंग हो गई। इन्हें अपने ऊपर बड़ी लज्जा आई। कोई देख लेता तो भला क्या कहता। यह स्त्रियों की भाँति रोना वीरों को स्वप्न में भी शोभा नहीं देता। माधव झटपट उठ बैठे और मुँह-हाथ धोकर आबाजी के शिविर की ओर चले। जिस समय यह वहाँ पहुँचे उस समय आबाजी अत्यन्त ही उदास बैठे थे। माधव को देखते ही बोले—आओ माधव, कहो प्रातःकाल कैसे आना हुआ।

माधव—प्रभु, रात्रि को मैंने बहुत भयानक स्वप्न देखे

इस कारण चित्त को शान्तिलाभ कराने के अभिप्राय से प्रभु के श्रीचरणों में ले आया हूँ। परन्तु यहाँ देखता हूँ कि प्रभु भी आज मलीन हो रहे हैं। कारण जानने को चित्त उद्विग्न हो रहा है। कृपया अपना कुशल-समाचार बताकर दास का संकट मोचन कीजिये। कुशल तो है? प्रभु का चित्त आज कैसा है?

आबाजी—कुछ तो नहीं माधव, परन्तु न-जाने आज क्यों अनायास ही चित्त उदास हुआ जाता है। न-जाने चित्त में क्यों यह धारणा समा गई है कि अब इस जन्म में पूज्य माताजी के दर्शन न कर सकूँगा। मैं बहुतेरा इसे बहलाने की चेष्टा करता हूँ। परन्तु मन किसी प्रकार भी नहीं मानता, धारणा जमी हुई है किसी प्रकार भी नहीं टलती।

माधव—प्रभु यह तो आपने बड़े ही आश्चर्य की बात सुनाई। क्षमा कीजियेगा, आपके हृदय में ऐसी दुर्बलता शोभा नहीं देती।

आबाजी—जानता हूँ माधव, परन्तु हृदय किसी प्रकार से मानता ही नहीं। मैं क्या करूँ, मेरी कुछ समझ में ही नहीं आता?

माधव—प्रभु, भला अब आपको मातृचरणों में जाने से कौन रोक सकता है? ईश्वर की असीम कृपा से आपका व्रत पूरा हो गया अब तो आपका जाना निश्चय हो गया। फिर ऐसा विचार भी प्रभु के हृदय में आना आश्चर्यजनक है। भला ऐसी कौनसी शक्ति है जो आपको मातृचरणों में जाने से रोक सके!

आबाजी—दैवी शक्ति! माधव, दैवी शक्ति!! वह जो चाहे करा सकती है। क्षण में राजा को रंक और रंक को राजा

बना देती है। उस शक्ति का कोई भी पार नहीं पा सकता। मैं यह जानता हूँ कि संकल्प पूरा हो गया अब मैं बिना किसी विघ्न-बाधा के माता के पास जा सकता हूँ, परन्तु फिर भी हृदय कहता है कि नहीं। अब तुम्हीं बताओ मैं क्या करू।

माधव—प्रभु, अब इस चिंता को छोड़िये और चलकर बन्दियों का विचार कीजिये फिर मैं और आप दोनों श्रीमातेश्वरी के दर्शन को चलेंगे। प्रभु, मैं अवश्य ही इस बार माँ पाऊँगा, मुझे इसका स्वप्न हुआ है।

आबाजी—अच्छा माधव, तुम चलो मैं भी अभी आता हूँ। यहाँ का काम समाप्त करते ही मैं तुम्हारे साथ अपना वचन पूरा करने चलूँगा।

माधव प्रणाम करके विदा हो गये। आबाजी नित्य-कर्म में लग गये। सन्ध्या इत्यादि से निबटकर वे वस्त्रों से सुसज्जित होकर दरबार की ओर चले। पाठक, इन्हें धीरे धीरे आने दीजिये, चलिये हम लोग पहले से चलकर वहाँ अपने अपने स्थान पर बैठ जायँ नहीं तो फिर प्रहरी लोग घुसने न देंगे।

दरबार बड़े समारोह से लगा है। बीचोबीच एक बड़े चँदवे के नीचे एक ऊँची संगमरमर की चौकी पर मसनद बिछी हुई है। उस चौकी के दोनों ओर कुछ हटी हुई छोटी परन्तु अत्यन्त सुन्दर दो और चोकी बिछी हुई है। उसके बाद चँदवे की चोबोंके सहारे नगर के सामन्तगण क्रम से खड़े हैं। मसनद के पीछे पचास सशस्त्र मरहठा सैनिक मौन खड़े हैं। सामने को ओर सेना की दो टुकड़ी अर्द्धचन्द्राकार खड़ी है। चँदवे के बाहर एक मार्ग बना है जिसके दोनों ओर दुर्ग के पठान सैनिकगण जिन्होंने आधिपत्य स्वीकार कर लिया है पंक्तिबद्ध खड़े

हैं। परन्तु थोड़े थोड़े अन्तर पर उनके बीच बीच में एक एक मरहठा सैनिक भी दिखाई देता है। इनके पीछे नगर के लोगों की भीड़ है। इनके चारों ओर दुर्ग की तोपें स्थापित की गई हैं और उन पर मरहठा गोलन्दाज़ बैठे हैं।

धीरे धीरे सूर्य भगवान् सिर पर आने लगे। उनकी किरणें सारे संसार को तप्त करने लगीं। लोग नये अधिकारी को देखने के लिए व्यग्र हो उठे। उसी समय तुरही का बड़ा कठोर शब्द हुआ और साथ ही प्रहरी ने कहा—"सावधान !" सब उत्कण्ठा से सड़क की ओर देखने लगे। धीरे धीरे कुछ लोग आते दिखाई दिये। दर्शकों की भीड़ बढ़ गई। सब आगे बढ़कर नये सूबेदार को देखना चाहते थे।

धीरे धीरे आबाजी सोनीदेव एक नग्न खड्ग हाथ में लिये आते दिखाई दिये। उनके पीछे पार्श्वचर के रूप में माधव थे। माधव के पीछे और और सरदारगण यथाक्रम थे। यह सब चलकर चँदवे के नीचे पहुँचे। सारा आकाश जयजय-कार से गूँज उठा। लोग—"महाराज शिवाजी की जय, भग-वान् एकलिंग की जय, आबाजी सोनीदेव की जय"—इत्यादि चिल्लाने लगे। आबाजी मसनद के सामने जाकर रुक गये। सब सरदारगण अपने अपने निर्दिष्ट स्थानों पर जाकर खड़े हो गये। आबाजी ने एक बार चारों ओर देखा फिर यों कहने लगे—मित्रो ! आप लोगों को ज्ञात होगा कि मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं विना कल्याण विजय किये अपने घर नहीं जाऊँगा। आज उस परमपिता परमात्मा की असीम कृपा और आप लोगों की सहायता से मेरा वह संकल्प पूरा हो गया। आज मैं इस सूबे को महाराज शिवाजी के अधीन करने का कारण हो सकने के कारण अपने को भाग्यशाली

समझता हूँ। आज मैं इस महाराज की दी हुई कृपाण को महाराज की अनुपस्थिति में राजा का ही अंश मानकर मसनद पर स्थान देता हूँ और जब तक महाराज की कोई दूसरी आज्ञा नहीं होती तब तक मैं इस खड्ग की अधीनता में सारा कार्य आप लोगों की सहायता से सम्पादन करता रहूँगा।

यह कहकर आबाजी ने खड्ग मसनद पर रख दी और आप बराबर की एक चौकी पर बैठ गये। वायुमण्डल फिर जय-जयकार से गूँज उठा। इसी समय प्रहरी ने फिर पुकारा—"सावधान!" दरबार में सन्नाटा छा गया। ऐसी निस्तब्धता थी कि यदि सुई भी गिरती तो उसके गिरने का शब्द सुनाई देता। इस सन्नाटे को रह रहकर केवल एक ही शब्द भंग कर रहा था। वह उन शृँखलाओं का शब्द था जिनमें जकड़े हुए बंदीगण पास ही की एक कोठरी में अपने भाग्य-लिपि के खोले जाने की बाट देख रहे थे। जिस कारागार में किसी समय जिनकी आज्ञा से अनेक अपराधी बंद किये जाते थे आज वे स्वयं ही अपराधी की भाँति उसी में बंद अपने भाग्य को सराह रहे हैं। समय तेरी बलिहारी! इसी समय आबाजी ने एक प्रहरी को संकेत किया। संकेत पाते ही वह उन भाग्यहीन निरपराध अपराधियों को दरबार में लाने चला गया। थोड़ी ही देर पश्चात् बंदी लोग सैनिकों से घिरे हुए लाकर खड़े कर दिये गये। सबके सिर अभिमान से ऊपर उठे हुए थे और वे बड़े गर्व से आबाजी की ओर देख रहे थे। आबाजी उन्हें इस प्रकार देखते देख बोले—क्यों सूबेदार साहब! क्या अब भी आपका अभिमान नहीं मिटा? क्या अब भी आप इस प्रकार सिर उठाकर खड़े होने योग्य हैं?

सूबेदार—मरहठा बहादुर, जब दो शख्स लड़ते हैं तो उनमें

एक हारता है। इसमें शेखी मारने की कोई बात नहीं। खुदा की मर्ज़ी ही ऐसी थी कि मैं तुम्हारे हाथ कैद हो गया वरना मैं हज़ारों बहादुरों से तलवार चला सकता हूँ। रहा ग़रूर करना तो भाईजान ग़रूर हर हालत में बुरा है। मगर मैं तुम्हारे सामने सिर झुकाकर ही क्यों खड़ा रहूँ। मैंने कोई बहादुरी की शान के ख़िलाफ़ काम नहीं किया है। मैं मैदान छोड़कर तो नहीं भागा जो होनी थी हुई। लड़ाई में हार जाने से ही किसी का सिर नहीं झुक जाता। मैंने अपने मालिक के नमक का फ़र्ज़ अदा किया। यह मैं जानता हूँ कि हम लोगों की क़िस्मतों का फ़ैसला इस वक्त तुम्हारे हाथ में है मगर इस वजह से मैं बुज़दिल की तरह गिड़गिड़ा नहीं सकता जो कुछ तुम्हारे दिल में आवे, करो तुम्हें अख़्तियार है।

आबाजी—तुम इस समय मुझसे किस बर्ताव की आशा रखते हो?

सूबेदार—जो बर्ताव एक बहादुर का दूसरे बहादुर से होना चाहिये।

आबाजी—परन्तु यदि मैं इस समय तुम्हें प्राणदण्ड दूँ तो?

सूबेदार—तो? तो मैं तुम्हें बहादुरी के दर्जे से उतारकर एक नाचीज़ कुत्ते से भी बदतर दर्जे का समझने लगूँगा।

इसी समय किसी ने कहा—"ठीक है, तुम्हारे साथ वीरोचित व्यवहार ही किया जायगा।" सबने जो घूमकर देखा तो महाराज शिवाजी को खड़ा पाया। सबने फिर जयजयकार किया। शिवाजी ने आगे बढ़कर आबाजी को हृदय से लगा लिया। फिर प्रहरी से बोले—प्रहरी बंधन खोल दो।

प्रहरी ने सबके बन्धन खोल दिये। तब शिवाजी मौलाना मुहम्मद से कहने लगे। सूबेदार साहब, मैं आपके वीरोचित

व्यवहार को देखकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ हूँ। जो कोई कष्ट आपको युद्ध के नियम के कारण हुआ आशा है कि आप उसके लिए क्षमा करेंगे। इस समय आप मुक्त हैं। यदि आप स्वीकार करें तो मैं अपनी सेना में ही आपको उच्च पद दे दूँ और यदि आपकी अब भी लड़ने की इच्छा हो तो फिर बीजापुर के सुलतान के पास चले जाइये। मैं अपने सैनिकों के साथ आपको बीजापुर पहुँचवा दूँगा।

सूबेदार—राजा साहब, मैं आपका नाम बहुत अर्से से सुनता चला आता था, आज आपको देखकर मैं अपने को खुशनसीब समझता हूँ। हालाँ कि मैं आपके बहादुर सरदार से लड़ाई में हार गया था मगर मेरा दिल उस शिकस्त को क़बूल नहीं करता था। आपके इस बर्ताव से मुझे पूरी शिकस्त हो गई। आपकी मातहती में काम करना मैं बाइसे फख़्र समझता हूँ मगर मुझे सख्त अफ़सोस है कि मैं आपकी बात क़बूल करने से माज़ूर हूँ। मेरा बाल बाल बीजापुर के सुलतान का नमकख्वार है। जब तक इस जिस्म में एक क़तरा भी खून रहेगा तब तक मैं अब किसी और शख़्स के लिए तलवार न उठाऊँगा। मैं आपके कहने के मुताबिक़ बीजापुर चला जाऊँगा।

शिवाजी—धन्य वीरवर, धन्य। तुम्हें यही उचित है।

यह कहकर महाराज शिवाजी ने आगे बढ़कर उन्हें हृदय से लगा लिया और अपने साथ लाकर अपने पास की दूसरी चौकी पर बैठा दिया। फिर आबाजी से कहने लगे—प्रिय गुरुभाई, मैं तुम्हारे कार्य से अत्यन्त ही सन्तुष्ट हूँ। मैंने सोचा था कि मैं सूबेदार साहब को ही इनका पद दूँगा परन्तु मेरे कर्म के दोष से इन्होंने उसे स्वीकार नहीं

किया। अब आशा है कि तुम इस भार को अपने ऊपर लेकर मुझे इस ओर से निश्चिन्त कर दोगे।

आबाजी—दास कृतार्थ हो गया महाराज! परन्तु इस विजय की पूरी कीर्त्ति माधवराव को ही मिलनी चाहिये क्योंकि विना इनकी सहायता के मैं कदापि यह कार्य सम्पादन नहीं कर सकता था।

शिवाजी—मैं माधव को भूला नहीं हूँ सोनी देव! मैं उनकी स्वामिभक्ति पर मुग्ध हूँ। इससे इन्हें मैं यह खड्ग देता हूँ और मनसबदार माधव से आशा करता हूँ कि वे इसके और अपने पद सम्मान की रक्षा अच्छी प्रकार कर सकेंगे और देखो माधव, अपनी सेना के अन्य वीरों को भी पदवृद्धि कर दो।

माधव—मैं प्रभु को धन्यवाद देता हूँ और शपथ खाता हूँ कि प्राण रहते अपने पद और इस खड्ग की मान-रक्षा सदैव करता रहूँगा।

शिवाजी—तुमसे ऐसी ही आशा है। अच्छा देखो, सूबेदार साहब को सकुशल बीजापुर पहुँचाने का प्रबन्ध कर दो और नगर में घोषणा कर दो कि जो लोग हमारे अधीन न रहना चाहें वे प्रसन्नतापूर्वक विना हमारे क्रोध का पात्र हुए सूबेदार साहब के साथ बीजापुर चले जायँ, और जो सैनिक हमारी सेना में सम्मिलित होना चाहें उन्हें उनके योग्य स्थान देने का भी प्रबन्ध कर दो। समझ गये न?

माधव—समझ गया धर्मावतार!

शिवाजी—हाँ, ठीक है। इस कार्य को समाप्त करके शीघ्र ही आओ। हमें और भी बहुतसे कार्य करना है। (फिर आबाजी से) प्रिय सोनीदेव, आप मेरे इस अचानक यहाँ आ पहुँचने पर आश्चर्य करते होंगे। मैं यहाँ यों ही नहीं चला

आया हूँ वरन् यहाँ आने में मेरा एक प्रयोजन है। मुझे गुप्तचर के द्वारा तुम्हारे यहाँ चलने का समाचार विदित हो गया था। मैं तुमसे मिलने के लिए यहाँ चला आया। अब तुम मिल गये हो मेरा कार्य भली प्रकार हो जायगा।

आबाजी—महाराज, ऐसा कहकर सेवक का मान बढ़ाते हैं तो भी सेवक को आज्ञा मिलनेभर की देर है, सेवक प्राण देने में भी नहीं सकुचता।

शिवाजी—मैं यह जानता हूँ सोनीदेव! ख़ैर, यह सब फिर होगा। इस समय सभा विसर्जन कर दो और देखो भोजन के उपरान्त मुझसे मिलो और माधव को भी साथ लेते आना। यह युवक होनहार प्रतीत होता है!

आबाजी—यथार्थ में बड़ा ही स्वामिभक्त युवक है।

यह कहकर महाराज शिवाजी उठकर दरबार से चले गये। जाते जाते महाराज ने आबाजी के कान में कहा—सोनीदेव, हम आज ही युद्ध पर जाना चाहते हैं! हम यह जानते हैं कि तुम अभी युद्ध से थके हुए हो परन्तु तुम्हारे बिना हमारा कार्य नहीं पूरा होगा। आशा है कि तुम अवश्य ही चलोगे और देखो नगर के बाहर हमारी सेना पड़ी है उसकी देखरेख का प्रबन्ध किसी को सौंप दो।

शिवाजी और सोनीदेव के चले जाने के पश्चात् धीरे धीरे सारा दरबार ख़ाली हो गया। सब लोग महाराज शिवाजी की बड़ाई करते करते अपने अपने घर चले गये।

भोजन के उपरान्त आबाजी सोनीदेव माधव को साथ लेकर महाराज शिवाजी के पास गये। वहाँ ये तीनों आपस में बहुत देर तक सलाह करते रहे फिर शिवाजी को वहीं छोड़कर दोनों व्यक्ति इधर-उधर के काम में लग गये।

धीरे धीरे सूर्य भगवान् अस्ताचल को चले गये। पृथ्वी अन्धकारमय हो गई। कल्याण में धीरे धीरे सब ओर शान्ति फैल गई। केवल कुत्तों के भूँकने और चौकीदारों के चिल्लाने के अतिरिक्त और कोई भी शब्द सुनाई न देने लगा। इसी समय एक ओर से कुछ भनभन शब्दसा आता प्रतीत हुआ, जैसे किसी ने किसी शहद की मक्खी के छत्ते को छेड़ दिया हो। धीरे धीरे शब्द निकट आता गया। अब स्पष्टरूप से मनुष्यों के चलने की आहट सुनाई देने लगी। थोड़ी देर में एक दस-बीस मनुष्यों की टुकड़ी चुपचाप नगर के बाहर हो गई। उसके पश्चात् एक और फिर और इसी प्रकार धीरे धीरे बहुतसे मनुष्य नगर के बाहर चले गये। नगर का फाटक खुला था। पहरे पर दो सैनिक सतर्क खड़े थे और हर एक व्यक्ति को खूब ध्यान से देख रहे थे। जब लगभग ५०० मनुष्य नगर के बाहर हो गये तो दोनों प्रहरियों ने द्वार बन्द कर दिया। फिर उन्होंने एक शंखनाद किया जिसके उत्तर में दुर्ग के किसी भाग से भी शंखनाद हुआ और साथ ही कुछ सैनिक एक नायक के साथ उस स्थान पर आ पहुँचे। उन दोनों में से एक ने आगे बढ़कर एक पत्र नायक के हाथ में दिया और कहा—महाराज शिवाजी ने यह आज्ञापत्र मेरे नाम इस सैनिक के हाथ भेजा है। इसके अनुसार हम दोनों को आवश्यकीय कार्य से इसी समय दुर्ग के बाहर जाना होगा। आप यहाँ दूसरा पहरा बैठा दीजिये।

सरदार—(पत्र पढ़कर) अच्छा, तुम लोग जा सकते हो परन्तु हाँ, प्रथम चिह्न तो बताओ।

सैनिक—कृपाण।

सरदार—अच्छा, जाओ।

दोनों प्रहरी द्वार की खिड़की की राह से दुर्ग के बाहर निकल गये। द्वार फिर पूर्ववत् बन्द हो गया और वहाँ और सैनिक खड़े कर दिये गये।

हमारे दोनों सैनिक दुर्ग के बाहर निकलकर एक ओर चले। थोड़ी देर पश्चात् वह एक निर्जन स्थान में पहुँच गये। उनमें से एक ने किसी जंगली जानवर की भयानक बोली का शब्द किया। साथ ही उस निर्जन स्थान में मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देने लगे। इन सबको साथ लेकर हमारे दोनों सैनिक एक ओर चले। कुछ दूर आगे जाकर इन्हें और लोग भी कहीं जाने को प्रस्तुत खड़े दिखाई दिये। इन लोगों के पहुँचते ही सब लोग मिलकर एक ओर चल दिये।

त्रयोदश परिच्छेद

फिरंगजी नरसुला शान्ता और मनोरमा के साथ तेज़ी से चाकन की ओर चला जा रहा था। बीजापुर से चाकन को दो राहें गई थीं; एक सीधी जिससे कि साधारण व्यक्ति जाते थे, दूसरी राह विकट जंगल में से होकर गई थी और पहली राह से अत्यन्त छोटी थी। हमारे फिरंगजी इसी राह से होकर चाकन जा रहे थे। तीनों व्यक्ति आपस में बातचीत करते जाते थे।

मनोरमा—क्यों शान्ताजी, आप इस समय तो युद्ध में

हमारी ओर से जा रही हैं कहीं अकस्मात् वहाँ माधवराव से मुठभेड़ हो गई तो किसकी ओर से लड़ोगी ?

शान्ता—भाभी, मुझे तो आशा नहीं है कि मेरा भाग्य ऐसा बलवान् होगा कि उनकी झलक युद्ध में ही दिखा दे। परन्तु हाँ, यदि उनसे भेंट हो गई तो मैं प्राण रहते अवश्य ही बाकन की स्वाधीनता के लिए युद्ध करुँगी। उनका प्रेम मुझे कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं कर सकता।

फ़िरुंगजी—ठीक है बहन ! वीरों और वीरांगणाओं का यही नियम है कि जिस पक्ष को पकड़ लेते हैं उसका प्राण रहते कदापि साथ नहीं छोड़ते। इस पर मुझे एक कथा स्मरण हो आई। एक विदुषी ने अपने प्यारे से किस वीरता से युद्ध किया और फिर उसी के हाथ कैसे वीर-गति को प्राप्त हो गई !

शान्ता और मनोरमा—कैसे ! कौनसी कथा है ? कृपया हमें सुना दीजिये। हमारा हृदय सुनने को उत्कंठित हो रहा है।

फिरुंगजी—मुझे ठीक तो स्मरण नहीं है परन्तु जितनी कुछ है कहता हूँ सुनो।

दोनों—हाँ कहिये, हम लोग ध्यान से सुन रही हैं।

फिरुंगजी—प्राचीनकाल में यूरप में धर्मस्थान जेरुसलम के लिए बड़े बड़े युद्ध हुआ करते थे। जेरुसलम यवनों के आधीन था और ईसाई लोग उसे उनके अधिकार से छुड़ाना चाहते थे। कई बार उन्होंने चेष्टा की परन्तु प्रयत्न निष्फल ही गया। इसी समय यूरप में एक बड़ा बलवान् और शक्तिमान् राजा हुआ। उसने भी धर्मयुद्ध करने का विचार किया। इसी विचार से उसने अपनी सेना ऐकत्रित की। यूरप के अन्य राज्यों के पास रण-निमंत्रण भेजा गया। अंत को यह

बड़ी सेना जलयानों पर चढ़कर पुण्यक्षेत्र जेरुसलम के उद्धारार्थ चली! वहाँ पहुँचकर इन्होंने डेरे डाल दिये और अपने एक महावीर राजा को दूत बनाकर यवनराज के पास भेजा। यवनराज को भी इस बड़ी सेना के आने की टोह मिल गई थी। उसने भी युद्ध के निमित्त बहुतसी सेना एकत्रित की थी। उसकी सहायता को एक नवयौवना रानी भी अपनी सेना लेकर आई थी। दूत ने राजसभा में जाकर अपने सेनानायक का सन्देश कह सुनाया। सन्देश तो अस्वीकार होना ही था परन्तु एक बात यह हुई कि रानी और वह वीर राजा कामदेव के कुसुमशरों का लक्ष्य हो गये। दोनों के हृदय में प्रेम का अंकुर जम गया। दोनों ओर युद्ध की तैयारी हुई। युद्ध आरम्भ हो गया। कई दिन लगातार युद्ध होता रहा। दोनों ओर के वीर लड़ लड़कर वीर-गति को प्राप्त होने लगे। रानी अपने प्यारे वीर युवक की युद्ध में वीरता देखकर मुग्ध हो जाती थी। एक दिन लड़ते लड़ते रानी थककर युद्धक्षेत्र से खिसककर एक जंगल की ओर भागी और वहाँ एक स्थान पर एक झरने से जल पीने लगी। दैवयोग से एक यूरपीय योद्धा भी उधर आ निकला। उसने रानी को कोई विपक्षी वीर समझकर युद्ध के लिए ललकारा। दोनों झिलमटोप पहने थे इससे कोई, किसी को पहचान नहीं सकता था। दोनों में लड़ाई होने लगी। अन्त में बेचारा यूरपीय योद्धा घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसी समय वहाँ एक और योद्धा आ निकला और अपनी सेना के एक वीर को इस प्रकार पृथ्वी पर गिरते देख विजेता को युद्ध के लिए ललकारने लगा। उसका मुख क्रोध से लाल हो गया। रानी भी फिर खड्ग निकालकर खड़ी हो

गई। दोनों में युद्ध होने लगा। दैवसंयोग से रानी के एक चोट सांघातिक लग गई और वह गिर पड़ी। योद्धा ने जो दौड़कर उसका टोप उतारा तो उसके शोक का पारावार न रहा, उसने अपने हाथों ही अपनी प्यारी के प्राण लिये। वह रानी का सिर अपनी गोद में लेकर रोने लगा। आँसुओं की बूँदें मुख पर पड़ने से रानी ने आँखें खोल दीं और अपने प्यारे की गोद में अपना सिर रक्खा देखकर हँसी परन्तु वह हँसी सदा के लिए उसके होठों पर रह गई और वह सदा के लिए सो गई। युवक पागलसा हो गया। आत्महत्या करनी चाही पर किसी प्रकार बच गया; परन्तु सारी आयु उसे अपनी प्यारी के मारने का पछतावा रहा।

इस कथा के समाप्त होने के पश्चात् बहुत देर तक तीनों चुपचाप चले गये। शान्ता के हृदय में भाँति भाँति के विचार तरंगें मारने लगे। वह चुपचाप ध्यानावस्थितसी होकर जाने लगी। थोड़ी देर चुप रहकर मनोरमा ने पूछा—क्यों प्राणेश, क्या यह कथा सत्य है? आपको कहाँ से ज्ञात हुई?

फिरंगजी—प्रिये, सत्य या मिथ्या तो ईश्वर ही जाने; परन्तु तुम्हें याद है उस दिन वसन्तोत्सव पर जो वह फ़िरंगी सौदागर आया था?

मनोरमा—हाँ याद है। वही, जिससे आपने मना करने पर भी कई आभूषण मेरे लिए लिये थे।

फिरंगीजी—हाँ वही। उसी से मैंने कहा कि महाशय कोई कथा सुनाओ तो उसने उत्तर दिया कि महाराज, मुझे क़िस्से कहने का तो अभ्यास नहीं है परन्तु यदि आपका आग्रह ही है तो मैं अपने यहाँ की धार्मिक किंवदन्तियों में से एक आपको

सुनाता हूँ। उसके पश्चात् उसने मुझे यह कथा सुनाई थी। कथा बड़ी थी परन्तु मैं उसका बहुत सा अंश भूल गया हूँ।

इसके पश्चात् फिर थोड़ी देर तक तीनों चुपचाप चले गये। चलते चलते यह एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ पर राह अत्यन्त ही संकीर्ण हो गई थी। एक मनुष्य से अधिक एक बार उस मार्ग से कोई नहीं निकल सकता था इस कारण आगे आगे फिरंगजी, उनके पीछे मनोरमा और सबसे पीछे शान्ता चले। यह इस प्रकार थोड़ी ही दूर गये होंगे कि एक घनी झाड़ी से एक सिंह के गुर्राने का शब्द सुनाई दिया। फिरंगजी ने शब्द सुनकर बड़ी कठिनाई से घोड़े को आधा पीछे की ओर मोड़ा। इतने ही में सिंह ने निकलकर मनोरमा के घोड़े पर चोट की। बेचारा घोड़ा आक्रमण सहन न कर सका और घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। मनोरमा ने उस पर से कूदने में बड़ी फुर्ती दिखाई, परन्तु स्थान के अभाव से उनकी चेष्टा निष्फल हो गई और वे घोड़े के साथ ही साथ पृथ्वी पर गिर गई। सिंह उनकी ओर झपटा। बड़ा कठिन समय था, फिरंगजी अभी घोड़े को मोड़ ही रहे थे कि शान्ता का घोड़ा भी ठिठककर कुछ पीछे हट गया था। उन्होंने उसे कई बार आगे बढ़ाने की चेष्टा की परन्तु व्यर्थ घोड़े को न हिलना था न हिला। सिंह लागू जान पड़ता था वह क्रोध से मनोरमा पर टूटना ही चाहता था। फिरंगजी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। उनका धैर्य जाता रहा। उन्हें कुछ उपाय ही न सूझ पड़ने लगा। निकट ही था कि सिंह आक्रमण करे कि शान्ता शीघ्रता से घोड़े से कूद पड़ी और दौड़कर सिंह और उसके आखेट के बीच में आ गई। सिंह ने भी इसके भरपूर हाथ मारा परन्तु इसने अपने स्थान

से तनिक हटकर उसके आक्रमण को व्यर्थ कर दिया। फिर अवसर पाकर खड्ग का एक ऐसा हाथ उसने मारा कि बेचारा सिंह मरकर पृथ्वी पर लोटने लगा। इसी समय मनोरमा भी उठ खड़ी हुई थीं उन्होंने दौड़कर शान्ता को हृदय से लगा लिया। फिरंगजी भी घोड़े से उतरकर आ गये और बोले—बहन, तुम्हारे ही कारण आज इनकी जीवनरक्षा हो गई नहीं तो ठीक नहीं था। हम दोनों आयु पर्यन्त तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हो सकते।

शान्ता—(लज्जा के कारण रक्त-वर्ण होते हुए) ऐसा न कहो भाई! मैं तो आप ही तुम्हारे अनुग्रहों से इतनी दबी हुई हूँ कि सिर नहीं उठा सकती। फिर आप मुझे इस तुच्छ कार्य पर ऐसी बातें कहकर लज्जित न करें।

मनोरमा—तुच्छ कार्य! तुमने तो अपनी जान स्वयं ही संकट में डाल दी थी। ख़ैर, मैं तुम्हारी क्या बड़ाई करूँ। हमारा कोई बड़ा ही पुण्य उदय हुआ था जो ईश्वर ने अनुग्रह करके तुम्हें हमारे पास पहुँचा दिया।

ये बातें हो रही थीं कि एक अश्वारोही के आने की आहट पाकर सब चौंक पड़े। फिरंगजी ने जो पीछे की ओर फिरकर देखा तो एक सैनिक अश्वारोही को अपनी ओर आते पाया। यह उसकी प्रतीक्षा में खड़े हो गये। वह भी और निकट आ गया। राह घिरी देख उसने अपने घोड़े को रोक लिया। फिर फिरंगजी को पहचान घोड़े से उतर पड़ा और निकट आकर हाथ जोड़कर कहने लगा—महाराज, मैं आपके ही पास जा रहा था अच्छा हुआ आप यहीं मिल गये।

फिरंगजी—क्यों, क्या समाचार है, कुशल तो है न?

सैनिक—महाराज, कुशल का क्या काम। दुर्ग पर

शिवाजी ने आक्रमण किया है। सेना भरसक दुर्ग की रक्षार्थ युद्ध कर रही है परन्तु महाराज के न होने से उत्साह कुछ ठंडासा है। मुझे सेनापति ने आपको बुलाने भेजा था। विलम्ब होने से दुर्ग हाथ से निकल जाने की संभावना है।

फिरंगजी—अच्छा, हम अभी वहाँ पहुँचते हैं तुम इस आहत घोड़े को लेकर बीजापुर चले जाओ।

सैनिक ने अपना घोड़ा मनोरमाजी को दे दिया और आप उस घायल घोड़े की देखरेख में लग गया। इधर ये तीनों व्यक्ति घोड़ों पर चढ़कर वेग से चाकन की ओर चले।

चाकन अब अधिक दूर नहीं रह गया। वह सामने पहाड़ी पर दुर्ग दिखाई दे रहा है! फिरंगजी अपना घोड़ा बढ़ाकर एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ से दुर्ग का फाटक स्पष्टतया दिखाई पड़ता था। यह अपनी अवस्था का ज्ञान करने के लिए बड़ी उत्कंठा से उस ओर देखने लगे। मरहठा सेना दुर्ग को चारों ओर से घेरे पड़ी थी और दुर्ग पर बार बार आक्रमण हो रहा था। इन्होंने घोड़े को द्रुत वेग से दुर्ग की ओर अग्रसर किया। अब दुर्ग और इनमें केवल मरहठा सेना का अंतर रह गया था। इसी समय "महाराज शिवाजी की जय" से आकाश गूँज उठा। फिरंगजी ने जो,उस ओर देखा तो व्यथितसे होकर आगे की ओर दौड़े, परन्तु अधिक आगे न बढ़ सके। मरहठों की एक टुकड़ी ने इनकी गति का अवरोध कर दिया। आबाजी सोनीदेव मन्त्रणा के अनुसार बाहर से जानेवाली किसी सहायता को रोकने के लिए खड़े ही थे। माधव आज इस समय उनके पास नहीं हैं उनको आज दूसरी ही ओर युद्ध करने की

आज्ञा है। गति अवरोध होते देख तीनों व्यक्ति आबाजी का सेना से भिड़ गये। इतने ही में तुरही का कठोर शब्द सुनाई दिया। फिरंगजी ने दुर्ग की ओर देखा—दुर्ग का फाटक खोल दिया गया था और इनकी सेना युद्ध करती हुई बाहर निकल आई थी। युद्ध फिर होने लगा। फिरंगजी अपनी सेना में जा मिलने की प्राण-पण से चेष्टा करने लगे परन्तु आबाजी उनका सब प्रयत्न निष्फल कर देते रहे। इसी समय दुर्ग की ओर से फिर जयजय का शब्द सुनाई दिया। फिरंगजी का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया। आबाजी ने शत्रु का ध्यान हटा जान अवसर देख आक्रमण कर दिया। निकट ही था कि खड्ग फिरंगजी पर भरपूर बैठे परन्तु शान्ता ने देख लिया और वह तुरन्त वहाँ आकर आबाजी से युद्ध करने लगी। आबाजी का अस्त्र चल चुका था वह फिरंगजी को छोड़ शान्ता के ऊपर पड़ा। फिरंगजी साफ़ बच गये परन्तु शान्ता हज़ार चेष्टा करने पर भी आक्रमण को काट न सकी और आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिरंगजी चिल्ला उठे और उन्हें क्रोध चढ़ आया। इसी समय फिर शिवाजी का जयजयकार सुनाई दिया। फिरंगजी ने देखा कि दुर्ग पर एक सैनिक शिवाजी का झण्डा लिये खड़ा है उनकी सेना के पैर उखड़ गये हैं और वह भाग खड़ी हुई है; दुर्ग में से कुछ सैनिकों ने उनका पीछा किया है। इधर मनोरमा ने झट घोड़े से उतरकर शान्ता का शरीर उठा लिया और उसे लेकर युद्ध के बीच से निकल आईं। इनका घोड़ा भी इनके पीछे पीछे बाहर आ गया। उन्होंने शान्ता को उस पर रखकर बीजापुर की ओर प्रस्थान किया। फिरंगजी उस समय पागल की भाँति युद्ध कर रहे

थे। इसी समय इनकी सेना के भागे हुए लोग इनके पास से होकर जाने लगे। इन्होंने चिल्लाकर कहा—मित्रो, ठहरो।

बोली पहचानते ही सैनिक लौट पड़े! जो टुकड़ी पीछा करती आई थी उसके सरदार माधव थे। भागती सेना को रुकते देख वह भी रुक गये। फिरंगजी ने उन पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया। आबाजी इस भागती हुई सेना को लौटते देखने लगे युद्ध से एक क्षण के लिए उनका ध्यान हट गया और अपनी अवस्था का ज्ञान होने के पहले ही फिरंगजी की खड्ग से जगज्जननी काली के कराल खप्पर की भेंट हो गये। माधव दौड़कर उनके पास आये परन्तु काम हो चुकने पर माधव आबाजी को न बचा सके सही, परन्तु उनके हृदय-पट पर घातक का चित्र अंकित हो गया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं आबाजी की हत्या का प्रतिशोध करूँगा। इसी दुर्ग की ओर से और सेना आती हुई दिखाई दी। फिरंगजी ने सोचा कि युद्ध करना व्यर्थ है, दुर्ग तो इस समय हाथ आता नहीं, फिर व्यर्थ प्राण देने से क्या लाभ? हानि यह होगी कि सेना के यह चुने वीर काल के ग्रास अकारण ही हो जायँगे। यह सोचकर वे अपने सैनिकों से कहने लगे—वीरो! मेरी समझ में इस समय अब अधिक युद्ध करना व्यर्थ है क्योंकि अब दुर्ग लौटने की कोई संभावना नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि हम युद्ध में प्राण दे सकते हैं; परन्तु इस प्रकार प्राण देना जन्म-भूमि को जान-बूझकर हमेशा के लिए परतन्त्र करा देना है, शत्रु को निर्भय कर देना है। इसी कारण मैं इस समय प्राण देना मूर्खता के अतिरिक्त कुछ नहीं समझता। वीरो! मेरी तुच्छ बुद्धि में इस समय हम लोगों को यहाँ से चले जाकर प्राणों की रक्षा

करना ही उचित है। फिर जब हमारी शक्ति बढ़ जाय तो फिर यत्न करके दुर्ग फेर लेना असम्भव कार्य नहीं होगा। इस समय प्राण खोना केवल आत्महत्या-मात्र है।

यह कहकर उन्होंने अपना घोड़ा पीछे की ओर फेर दिया। किसी ने भी उन्हें रोका नहीं और वे अपनी शेष सेना के साथ बीजापुर चले गये।

इधर माधव ने दौड़कर आबाजी का सिर अपनी गोद में रख लिया। आबाजी ने माधव की ओर देखा और मुसकराते हुए कहा—हमें यह पहले ही ज्ञात था। प्रिय माधव, अब सदा के लिए बिदा करो!

माधव—महाराज, भगवान् के लिए ऐसे अमंगल वचन मुख से न निकालिये।

माधव ने दोनों हाथ आबाजी की गरदन में डाल दिये। उनकी आँखों से अश्रु टपकने लगे, हृदय फटने लगा। वह कुछ न बोल सके। आबाजी की उन सुन्दर, काली आँखों की कालिमा और भी गहरी हो गई। धीरे धीरे मुख पर मृदु-हास्य की रेखा दौड़ गई, वे माधव की ओर देखकर अस्पष्ट शब्दों में धीरे धीरे कहने लगे-माधव, मुझे शोक है कि मैं अपना वचन तुमसे पूरा न कर सका। हरिइच्छा, भाई, परन्तु तुम अवश्य मेरी माताजी के पास जाना उन्हें अपना सब हाल सुनाना। उनसे हमारी मित्रता का हाल ब्योरेवार कहना। इससे उनका दुख कुछ घट जायगा। और सुनो! मुझे आशा है कि वह मेरी जगह तुम्हें समझकर तुमसे प्रेम करेंगी। अच्छा यह मेरे...... सिर.........की......लट......का......ट......लो ......और माँ......को......दे...... ..।

यहाँ उनका बोल पूर्णतया बंद हो गया। उन्होंने हाथ से

लट की ओर इंगित किया और सदा के लिए आँखें मूँद लीं। उनका जीवात्मा नश्वर शरीर को छोड़ वायु-मण्डल में चक्कर लगाने लगा। माधव शोक से पागलसे होकर अपना सिर धुनने लगे। उन्होंने आबाजी के सिर से वह लट काट ली और शव उठाकर दुर्ग की ओर चले।

दुर्ग के बाहर अब भी खूब युद्ध हो रहा था। दुर्गरक्षकों ने भाग जाने से प्राण देना अच्छा समझा, मरहठा सेना पर टूट पड़े और बड़ी वीरता से प्राण गँवाने लगे। माधव भी खड्ग लेकर उनमें धँस पड़े, परन्तु हृदय में जिसका चित्र अंकित था वह उन्हें कहीं भी नहीं दिखाई दिया। ये बड़े पराक्रम से लड़ते रहे। शत्रुओं ने अपनी जान की परवा न करके इन्हें घेर लिया। यह अत्यन्त वीरता से लड़ते रहे और एक एक करके सब को मार गिराया, परन्तु साथ ही अपनेआप भी अत्यन्त घायल हो गये। वहाँ से आगे बढ़कर यह आबाजी की शव के पास गये। वहाँ महाराज शिवाजी खड़े थे। यह अधिक चैतन्य न रह सके और "महाराज शिवाजी की जय" कहते कहते आबाजी के चरणों पर गिर पड़े।

चतुर्दश परिच्छेद

जिस समय माधव ने चैतन्यता लाभ की उन्होंने अपने-आपको एक शय्या पर पड़ा पाया। उनके आहत स्थानों पर पट्टियाँ बँधी हुई थीं। चैतन्य होते ही पहली वस्तु जिस पर

उनका ध्यान गया वह आबाजी के बालों की लट थी। उन्होंने हाथ उठाकर अपने सीने पर रक्खा। बालों की पोटली ज्यों की त्यों मौजूद थी। उन्होंने एक गहरा साँस ली और फिर आँखें मूँदकर लेट गये। अब केवल एक ही ध्यान उनके हृदय में चक्कर लगाने लगा। ध्यान था आबाजी के घातक से उनकी हत्या का बदला लेना। रह रहकर घातक की मूर्त्ति उनकी दृष्टि के सामने आकर नाचने लगती थी। वे उसे देखते ही सोचने लगते कि क्या कभी मैं अपने स्वामी की हत्या का बदला इस मूर्त्तिवाले घातक से ले सकूँगा। फिर कहते, "क्यों नहीं ले सकूँगा। संसार में जहाँ कहीं भी इससे मिलूँगा मेरा पहला कर्तव्य इससे इसके पाप का प्रायश्चित्त कराना होगा। फिर सोचते कि स्वामी की माता का न-जाने अपने पुत्र की मृत्यु का संवाद पाकर क्या हाल हुआ होगा? हाय, यदि मैं कुछ भी अच्छा होता तो जाकर उन्हें उनके इस दुख में धैर्य बँधाता। ईश्वर, क्या तूने मेरे भाग्य में यही लिखा है कि मेरे मित्र सब मुझसे छिन जायँ।" इसी समय उन्हें शान्ता का ध्यान हो आया। सोचने लगे—क्या इस जीवन में अब वह प्यारा मुख न देख सकूँगा? अथवा मैं भी किसी दिन अपने मित्र की भाँति बिना अपने हितुओं से मिले हुए, बिना वह प्यार से भरी अभिमानिनी की आँखें देखे हुए ही मृत्यु की एक चपेट में अंतिम नींद सो जाऊँगा? हाय! कदाचित् एक बार फिर उन अभिमानभरी आँखों को देख पाता! एक बार, केवल एक ही बार फिर उन अमृतमय वाक्यों का सुन पाता। हा मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। इसी प्रकार सोचते सोचते माधव को नींद आ गई। वे निद्रित-अवस्था में भी जाग्रत् के

समान ही विचारों में गोते खाते रहे। इसी समय किसी की पदध्वनि सुनकर उन्होंने आँखें खोलीं। सामने महाराज शिवाजी कुछ सरदारों के साथ खड़े थे। ये उठने की चेष्टा करने लगे, परन्तु महाराज शिवाजी ने इन्हें रोकते हुए कहा—इसकी कोई आवश्यकता नहीं है माधव, तुम अभी घावों के कारण अत्यन्त ही निर्बल हो रहे हो। उठने का परिश्रम करने से तुम्हारे घावों के फिर हरे हो जाने का भय है। इस समय हम यही पूछने आये थे कि तुम्हारा चित्त कैसा है?

माधव—प्रभु, आपके दर्शन पाने ही से मेरे सारे कष्ट दूर हो गये। अब इस समय मुझे कोई भी कष्ट नहीं है। हाँ, यदि मैं चल सकता।

शिवाजी—धैर्य रक्खो माधव, तुम शीघ्र ही चलने-फिरने लगोगे तभी हम भी तुम्हें तुम्हारी स्वामिभक्ति का उचित पुरस्कार देंगे। अच्छा, अब विश्राम करो, हम जाते हैं।

शिवाजी यह कहकर चले गये। माधव फिर पूर्ववत् विचारों में मग्न हो गये। वे सोचने लगे—प्रिय सोनीदेव, स्वामी तुम्हारी भविष्य-वाणी सत्य हुई। उस दिन मैंने और तुमने एकसा हो स्वप्न देखा था। तुमने उस स्वप्न का फल कहा था। हाय, तुम्हारा वह सोचना ठीक ही हुआ और आप मुझे पूज्य माताजी के पास न ले जा सके। अकाल ही काल के लक्ष्य हो गये। परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम मरे नहीं हो। तुम्हारी जीवात्मा जो सदा अमर है, वह अब भी सर्वदा मेरे साथ रहकर मेरे कार्यों का निरीक्षण करेगी और मुझे सर्वदा उचित मार्ग पर चलने का सन्देश देती रहेगी! मित्र! कहीं स्वर्ग में जाकर (क्योंकि निश्चय ही इस समय

तुम स्वर्ग में होगे) मुझ-जैसे किंकर को न भूल जाना, वहाँ अप्सराओं के मधुर संगीत में मुझ तुच्छ भृत्य की पुकार सुनी-अनसुनी न कर देना। मैं तुम्हें जब भी याद करूँ मेरी सहायता को अवश्य ही आना। अहा, मेरे चित्त से एक परदासा हट गया एक प्रकार का प्रकाशसा दिखाई देने लगा। मेरे मस्तिष्क से किसी ने बोझासा हटा लिया। मेरे कानों में मधुर संगीत की तरंगें सुनाई देने लगीं। अहा, स्वर्गीय सङ्गीत भी कैसा मधुर है। नहीं, तुम मुझे अब भी नहीं भूले हो। मेरा हृदय साक्षी दे रहा है। तुम मुझे कभी नहीं भूलोगे। सदैव मेरे पथ-प्रदर्शक बनकर मेरे संकटों से मेरा उद्धार करते रहोगे। प्रिय मित्र, मैं तुम्हें किस प्रकार धन्यवाद दूँ! हाय, आज तुम जीवित होते तो महाराज शिवाजी से किया गया मेरा सम्मान देखकर फूले अंग न समाते। ओह, मेरा हृदय कितना उछल रहा है। यह क्यों? इत्यादि। ये ही बातें सोचते सोचते माधव निद्रादेवी की गोद में सो गये। जब इनकी आँख खुली, दिन ख़ूब चढ़ गया था। एक भृत्य इनके जागने की आहट पाकर अन्दर आ गया उसकी सहायता से इन्होंने नित्य-कर्म से छुट्टी पाई। इसके उपरान्त वैद्यराज आये और उनके आहत स्थानों पर ओषधि लगाकर चले गये। माधव फिर अपने विचारों में निमग्न हो गये। इसी प्रकार जब कोई आता तो माधव इस जगत् में आ जाते नहीं तो दूसरे ही संसार में भ्रमण करते रहते। धीरे धीरे इनके घाव भर गए और इनमें चलने-फिरने की शक्ति भी आ गई। आज महाराज शिवाजी के पास से दूत आया है। उन्होंने इन्हें अपने सम्मुख बुलाया है।

सूर्य भगवान् का रथ तेजी के साथ आकाश-मण्डल में

बढ़ा चला जा रहा है। उसकी ज्योति से सारा संसार ज्योतिर्मय बन गया है। माधव शीघ्र शीघ्र वस्त्रों से सुसज्जित होकर महाराज शिवाजी के मंत्रणा-भवन की ओर जा रहे हैं। वहाँ पहुँचने पर द्वारपाल द्वारा ज्ञात हुआ कि महाराज उन्हीं की राह देख रहे हैं। यह शीघ्रता से अन्दर पहुँच गये। वहाँ महाराज शिवाजी अपने मित्रों और मंत्रियों के साथ विराजमान थे। माधव ने पहुँचकर उनका अभिवादन किया। शिवाजी उठ खड़े हुए और उनका हाथ पकड़कर ले आये और अपनेपास ही एक स्थान पर बैठा दिया और कहने लगे—देखो माधवराव, मैं तुम्हारी वीरता, स्वामिभक्ति तथा दृढ़ता देखकर इतना प्रसन्न हुआ हूँ कि मैं तुम्हारे लिए मामूली सैनिक का पद अत्यन्त ही छोटा और तुच्छ समझता हूँ। अस्तु, आज से तुम मेरे मित्र हुए। देखो स्वर्गीय प्रिय सोनीदेव की मृत्यु से मेरे चित्त को अत्यन्त ही दुख हुआ है और साथ ही हमारे कार्य में बहुत बड़ी क्षति पहुँचती है। हमारा एक बड़ा हितैषी और सलाहकार मंत्री उस एक व्यक्ति के रूप में हमसे छिन गया है। उस त्रुटि को हम बिना उसी मंत्री के सदृश दूसरा व्यक्ति पाये पूरा नहीं कर सकते। हमें विश्वास है कि यदि हम तुम्हें उस पद पर नियुक्त कर देंगे तो तुम ऐसा कार्य करोगे कि हमें उस त्रुटि का बहुत ही कम आभास होगा, अतएव हम तुम्हें उन्हीं के स्थान पर नियुक्त करना चाहते हैं। आज से तुम हमारे मंत्री और कल्याण के सूबेदार नियुक्त हुए। लो, यह खड्ग लो। हमें पूरा विश्वास है कि प्राण रहते तुम्हारे द्वारा इसका अपमान न होने पावेगा। हमारी एक और भी इच्छा है, वह यह कि तुम भी इस समय हमसे कोई उपहार माँगो।

माधव—महाराज ! मैं अपने को इस सम्मान के योग्य कदापि नहीं समझता; परन्तु इतना महाराज अवश्य जानते हैं कि मैं अपने ऊपर से महाराज का विचार बदलने का अवसर नहीं दूँगा। महाराज, आपने जो आज इस तुच्छ जीव को नीचे पृथ्वी से उठाकर पर्वत के शिखर पर बैठाया है उसके लिए मैं आजन्म ऋणी रहूँगा। महाराज, किसी और उपहार माँगने का मुझसे आग्रह न करें। मैं इसी सम्मान के बोझ से सिर उठाने में असमर्थ हो गया हूँ।

शिवाजी—नहीं माधव ! हमारी ऐसी ही इच्छा है। तुम निर्भय होकर उपहार माँगो, तुम्हें मिलेगा।

माधव—अच्छा, तो महाराज मेरा यह उपहार धरोहर की भाँति रख छोड़िए। जब आवश्यकता होगी, मैं माँग लूँगा।

शिवाजी—(हँसकर) अच्छा यही सही। बोलो तुम्हें और कुछ कहना है।

माधव—बस, महाराज मुझे और कुछ भी नहीं कहना है। महाराज की कृपा से आज दास कृतार्थ हो गया। परन्तु नहीं, महाराज मेरी एक प्रार्थना है। आशा है, उसे महाराज अवश्य ही स्वीकार कर लेंगे।

शिवाजी—बोलो, बोलो, क्या कहना चाहते हो ?

माधव—महाराज, मेरे स्वर्गीय स्वामी आबाजी सोनीदेव ने अपनी मृत्यु से पहले मुझे वचन दिया था कि वह मुझे अपनी पूज्या माताजी के दर्शनों को ले जायँगे और माताजी मुझे पुत्रवत् ग्रहण करेंगी। महाराज, स्वामी उस वचन को पूर्ण करने के प्रथम ही इस असार संसार से बिदा हो गये, परन्तु मृत्यु के कुछ क्षण पहले उन्होंने मुझे आदेश

दिया था कि मैं उनके बालों की एक लट उनकी माताजी के पास ले जाऊँ और उनसे अपना समस्त हाल कहूँ। इससे उनके संतप्त हृदय को शान्ति मिलेगी। महाराज, वह लट इस समय भी मेरे पास है। अब महाराज से यही प्रार्थना है कि महाराज मुझे इस सम्मान देने से प्रथम इतना अवकाश दें कि मैं अपने भूतपूर्व स्वामी का आदेश—उनका अंतिम आदेश—पालन करने में समर्थ हो सकूँ। क्योंकि महाराज फिर मुझे अवकाश मिले या न मिले। यह कौन जानता है, उनकी भाँति मैं भी विना इस कार्य को पूर्ण किये ही इस संसार से उठ जाऊँ तो उनकी और मेरी दोनों की आत्मा को दुख होगा। महाराज, इस प्रार्थना को अवश्य ही स्वीकार कर लें!

शिवाजी—(हँसकर) हम समझ गये माधव, तुम इस समय संसार से विरक्त हो रहे हो और किसी प्रकार सांसारिक झंझट से अपना पिंड छुड़ाना चाहते हो। परन्तु याद रक्खो, संसार में जिस प्राणी ने जन्म लिया है उसे इस संसार में कार्य करते करते मरना है। इस संसार में दुख के अतिरिक्त सुख तो नाममात्र को भी नहीं है। जो व्यक्ति इस संसार की कठिनाइयों को उठाने में असमर्थ हों उन्हें भी इस कठिन कार्यक्षेत्र में कार्य अवश्य ही करना पड़ता है। इस जीवन में माया से कहीं भी पिंड नहीं छूटता। माया सर्व जगत् को लिपटाये हुए है। परन्तु ख़ैर, हम तुम्हें तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य करने को नहीं कहेंगे। तुम जा सकते हो परन्तु जब चित्त शान्त हो जाय तब तुरन्त ही लौट आना!

माधव—महाराज, मुझे इस संसार में अब और कोई अभिलाषा नहीं है। बस, मैं अब आप ही के चरणों में अपना

प्राण त्यागूँगा, केवल यह तीर्थयात्रामात्र कर आऊँ। जिससे मेरा जन्म सुफल हो जाय। महाराज, इसमें स्वामी के आदेश के साथ ही साथ मेरा एक निजी लाभ भी है। वह यह कि मुझे मातृ-प्रेम का स्वाद मिलेगा! महाराज, मैं बहुत ही छोटा था जिस समय मेरी माता का स्वर्गवास हुआ था इस कारण मेरी मातृ-प्रेम पाने की प्यास ज्यों की त्यों बनी हुई है।

शिवाजी—अच्छा माधव, अब हम तुम्हें नहीं रोकेंगे। इससे तुम्हारे चित्त को भी शान्ति मिलेगी। तुम जा सकते हो।

माधव—महाराज की जय हो।

पञ्चदश परिच्छेद

माधव मंत्रणा-भवन से चलकर अपने रहने के स्थान पर आये और यात्रा की तैयारी करने लगे। दिनभर उन्हें इसी में व्यतीत हो गया। कभी कभी काम छोड़कर कुछ देर कुछ सोचने लगते और फिर काम में लग जाते। इसी प्रकार काम करते उन्हें सन्ध्या हो गई और जब संसार पर सूर्य भगवान् अपनी अन्तिम करुणपूर्ण दृष्टि डाल रहे थे उस समय माधव एक घोड़े पर चढ़कर दुर्ग के बाहर निकले। आबाजी सोनीदेव के बालों की पोटली इस समय बड़े यत्न से उनके सीने के पास किसी सूम के धन की भाँति लगी हुई थी। धीरे धीरे दिन ढल गया। सूर्य भगवान् ने अपना मुख अस्ताचल के गर्भ में छिपा लिया, चारों ओर अन्धकार का राज्य हो गया। उस सुनसान जंगल में जंगली

जन्तु बोलने लगे। माधव अपने विचारों में निमग्न चले जाते थे। बागें घोड़े की गरदन पर पड़ी थीं उसका चित्त जिधर चाहे वह चला जा रहा था। एकाएक सामने जंगल में से एक प्रकाश आता देखकर घोड़ा चौंककर खड़ा हो गया। माधव भी अपने ध्यान से जगे, इन्होंने एक बार चारों ओर देखा फिर ध्यान देकर प्रकाश की ओर देखने लगे, प्रकाश स्थिर था। यह कान लगाकर आहट लेने लगे, इन्हें कुत्तों के भूँकने का शब्द सुनाई दिया। इन्होंने प्रकाश की ओर घोड़ा बढ़ा दिया। प्रकाश धीरे धीरे निकट आता गया। कुत्तों का शब्द और भी स्पष्ट हो गया। यह धीरे धीरे एक ग्राम में पहुँचे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। कुत्तों के अतिरिक्त और कोई भी शब्द सुनाई न देता था। माधव सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये। इसी समय ग्राम के एक ओर से एकाएक कोलाहल उठा, साथ ही अँधेरी रात में उजाला हो गया। इन्होंने जो मुड़कर देखा तो एक मकान से अग्नि की लपटें निकल रही हैं और मनुष्य चारों ओर से उसे बुझाने के लिए दौड़ रहे हैं। यह भी घोड़ा बढ़ाकर उस स्थान के समीप पहुँच गये। मकान गाँव के मुखिया का था, दुतल्ले मकान के नीचे के खण्ड में अग्नि विकराल रूप धारण किये हुए थी और धीरे धीरे ऊपर के खंड पर भी अपना अधिकार जमाने की चेष्टा कर रही थी। मनुष्य इधर-उधर पानी की खोज में दौड़े जा रहे थे। मुखिया इस समय गाँव में नहीं थे। वे पड़ोस के गाँव में किसी आवश्यक कार्य से गये हुए थे। उनकी स्त्री बेचारी निद्रा से उठकर अग्नि अग्नि की पुकार सुनते ही घबराकर सीधी बाहर को चली आई थी। परन्तु अब जो उसका ध्यान गया तो उसके मुख से एक

बड़ी हृदयविदारक चीख निकल गई। उसका छोटा पुत्र और दो कन्यायें ऊपर के खंड में ही सोती रह गई थीं। चारों ओर हाहाकार मच गया परन्तु किसी का भी इतना साहस नहीं हो सका कि उस अग्निकुंड में घुस सके। उस घर के अन्दर जाना जान-बूझकर मौत के मुँह में जाना था। सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। अग्नि ने भयंकर रूप धारण कर लिया था। पुरानी धन्नियाँ बारूद की भाँति जल रही थीं और उनमें से चटक चटककर अंगारे चारों ओर का उड़ रहे थे। माता और भी भयंकर चीत्कार करके रोने लगी। इसी समय एक सैनिक भीड़ को चीरता हुआ उस अग्नि-कुंड में घुस गया। सबके सब एकत्रित व्यक्ति बड़ी उत्सुकता से मकान की ओर देखने लगे। अग्नि और भी प्रचंड हो उठी। ऊपर का खंड चलते चलते हिलने लगा। अब कुछ देर में सारा घर गिर जायगा, सब लोगों के साँस रुक गये, इसी समय जलती हुई धन्नियों पर पैर रखता हुआ सैनिक तीनों बच्चों को गोद में लिये हुए भीड़ में आ खड़ा हुआ और बच्चों की माँ के सामने खड़ा कर दिया। मकान अरराकर गिर गया और दूर तक फैलकर जलने लगा। धीरे धीरे भीड़ हटी परन्तु सैनिक को किसी ने भी नहीं देखा। न-जाने वह कहाँ चला गया।

पाठक, आप समझ गये होंगे कि सैनिक माधव ही थे। माधव भीड़ से निकलकर अपने घोड़े पर चढ़े और नगर के बाहर की ओर का रास्ता लिया। राह में जाते हुए मनुष्यों में से किसी से उन्होंने आबाजी के ग्राम का पता पूछ लिया था और उधर ही को घोड़ा मोड़कर तेज़ी के साथ चल दिये।

जिस समय माधव पंपापुर में पहुँचे उस समय सूर्य भगवान् आकाश में अपनी पूर्ण कला से चमक रहे थे। ग्राम में चारों ओर चहलपहल हो रही थी। ग्रामनिवासी अपने अपने काम में लगे थे। स्त्रियाँ घर के काम-धंधे में लगी हुई थीं। ग्रामीण बालकों का झुण्ड अश्वारोही के पीछे हो लिया। माधव अपना घोड़ा बढ़ाये हुए एक मकान की ओर चले गये। पाठक, हमारी पूर्ण परिचिता वृद्धा जिसे सब ग्रामीण लोग "बूढ़ी नानी के नाम" से पुकारते थे। इस समय प्रातःकालीन सन्धा समाप्त कर चुकी थीं और इस समय बैठी भागवत का पाठ कर रही थीं। उन्होंने जो घोड़े को अपने द्वार पर रुकते सुना तो पुस्तक बन्द करके बाहर आई। माधव ने उन्हें प्रणाम किया, वृद्धा ने आशीर्वाद दिया और घर में लिवा ले गई और फिर प्रेम से भरे हुए शब्दों में यों कहने लगी—मेरा हृदय कहे देता है कि तुम्हीं मेरे पुत्र के परम-मित्र माधव हो!

इससे अधिक वृद्धा कुछ और न कह सकी। उसका हृदय भर आया और उसने माधव को अपने हृदय से लगा लिया और फूट फूटकर रोने लगी। माधव भी अपने को न रोक सके उनकी भी आँखों में आँसू आ गये, वे भर्राई हुई आवाज़ से कहते कहते लगे—उन्होंने मुझे सुमार्ग दिखाया, पशु से मनुष्य बनाया, सामाजिक निन्दा और पाप से बचाया था। ईश्वर उन्हें मोक्ष दें! हा ईश्वर! तूने जो किया अच्छा ही किया होगा, सब उनके भले के लिए ही होगा।

वृद्धा—हाँ बेटा! ईश्वर जो करता है ठीक ही करता है। उसने जो-कुछ किया उसके भले के लिए ही किया होगा।

ईश्वर के कार्य में किसी का वश नहीं चलता। मैं जानती हूँ कि मेरा सोनी इस समय स्वर्ग में है। उसे कोई भी सांसारिक कष्ट नहीं है। पर हाय, मैं क्या करूँ। मेरा बेटा !!! हाय, वह मेरा एक ही बेटा था ! हाय !!!

माधव—माता धैर्य धारण करो। मैं तुम्हें क्या समझाऊँ ? आप तो ख़ुद ही विद्वान् हैं अब शोक करने से कोई भी लाभ नहीं है। आपके वीर पुत्र युद्ध में लड़कर वीर-गति को प्राप्त हुए हैं। इससे बढ़कर उनके लिए और क्या गौरव की बात होगी। माता ! हरएक वीर-जनना अपने पुत्र के लिए, बहन भाई के लिए यही कामना किया करती हैं कि या तो वे युद्ध में विजय ही प्राप्त करें नहीं तो युद्ध करते करते वीरगति को प्राप्त होकर स्वर्गलाभ करें। इसके अतिरिक्त उनकी और कोई भी कामना नहीं होती! मेरे स्वामी ने तो दोनों वस्तुयें एक ही साथ प्राप्त कर लीं, उन्हें विजय भी मिली और स्वर्ग भी, उनके लिए शोक करना व्यर्थ है।

वृद्धा—हाँ बेटा माधव, मैं अब अपनी आँख के तारे के लिए शोक न करूँगी। वह स्वर्ग में ही प्रसन्न रहे। मैं भी शीघ्र ही इस संसार को छोड़कर उससे जा मिलूँगी।

माधव—माता, ऐसा न कहिये। मेरे स्वामी ने मृत्यु होने से कुछ क्षण पहले मुझे एक वचन दिया था और एक आज्ञा की थी। आज्ञा यह थी कि मैं अपनी जीवन-कथा, जिस भाँति मैंने उन्हें सुनाई थी आपको भी सुनाऊँ। उनका मत था कि उसे सुनकर आपके हृदय को शान्ति मिलेगी जैसे कि उन्हें आप मिली। और वचन यह था कि आप मुझ माता-पिताहीन अनाथ को हर प्रकार से पुत्र समझकर प्यार करेंगी। जिससे मुझ अभागे को मातृ-प्रेम

पाने का सौभाग्य प्राप्त होगा। माता, यह कथा आज तक मेरे भूतपूर्व स्वामी के अतिरिक्त और किसी ने भी नहीं सुनी है। इस कहानी में मेरे जीवन के सारे रहस्य हैं। आज अपने स्वामी की अन्तिम आज्ञा पालन करता हूँ।

वृद्धा—कह बेटा कह, मैं अपने प्यारे पुत्र के अन्तिम वचन को पूर्ण होते देखना चाहती हूँ। मुझे दृढ़ विश्वास है कि तेरी कहानी सुनकर मुझे अवश्य ही शान्ति मिलेगी। मैं बड़े ध्यान से सुनती हूँ।

माधव—सुनिये माता, मेरे पिता बीजापुर राज्य के अधीन एक उच्च पदाधिकारी थे। मैं उनका एकलौता पुत्र था। जब मैं तीन वर्ष का था कि मेरी माता का शरीरान्त हो गया। मेरे पिता ने मुझे बड़े यत्न से पाला और उचित शिक्षा दी। हमारे मकान के बराबर ही दुर्गाध्यक्ष तुकोजी भोंसला का महल था। मैं उनके यहाँ बहुधा जाया करता था। हमारे और उनके घराने में आपस कासा ही व्यवहार था। तुकाजी के एक कन्या शान्ता थी वही मेरी बचपन की सहचरी थी। हम दोनों एक साथ रहते, एक ही साथ खेलते, एक ही साथ खाते और सोते थे। कभी मैं उसके यहाँ सो रहता था कभी हम दोनों अपने ही यहाँ खेलकर सो जाते थे। मेरे पिता और उसके पिता में बातचीत हो गई थी कि दोनों के बड़े होने पर इनका आपस में विवाह कर दिया जायगा। धीरे धीरे हमारा लड़कपन का समय व्यतीत हो गया। उस समय बीजापुर के बादशाह ने बिदरगढ़ मेरे पिता की सहायता से विजय किया था इस कारण उन्होंने पिताजी को ही वहाँ का क़िलेदार नियत किया। हमें बीजापुर छोड़कर पुरन्धर जाना पड़ा। यहाँ मेरे लड़क-

पन की संगिनी का मुझसे विछोह हुआ। मुझे अच्छी प्रकार याद है, मैं उस समय बारह साल का था और शान्ता की आयु सात साल की थी। परन्तु इतनी छोटी आयु होने पर भी उसमें बड़ी ही विलक्षण बुद्धि थी। जब हम लोग बीजा-पुर से चले उस समय भी शान्ता आँखों में आँसू भरे बहुत दूर तक हमें पहुँचाने आई थी। हमारे चले आने के कुछ काल बाद ही तुकोजी को भी सुलतान ने पूना की सेना का सेनानायक बनाकर भेज दिया। बिदरगढ़ पहुँचकर मेरे पिता ने मुझे वीरोचित शिक्षा देनी प्रारम्भ की। धीरे धीरे मैं पूरा सेनानी बन गया। उस समय मेरी आयु सोलह-सत्रह वर्ष की रही होगी। इस समय मैं बीच बीच में शान्ता से मिलने पूना जाया करता था। हम दोनों का प्रेम ज्यों का त्यों बना हुआ था। इसी समय महाराज शिवाजी ने सेना इकट्ठी की और इधर-उधर धावे करके शक्ति एकत्रित करने लगे। उन्होंने बीजापुर के सुलतान के राज्य का बहुतसा हिस्सा दबा लिया। उस समय बीजापुर के सुलतान आदिल-शाह थे। उनका ध्यान शिवाजी की ओर लगा देख उनके क़िलेदारों ने स्वतंत्र होना आरम्भ कर दिया। मेरे पिता भी स्वतन्त्र हो गये और मुझे भी सदैव स्वतन्त्र होने के लाभ बताते और स्वतन्त्र होने का आदेश देते। उन्होंने सुलतान को कर देना बन्द कर दिया। जिस पर सुलतान के कई आज्ञा-पत्र आये जिनका उत्तर नहीं दिया गया। फिर उसने आक्रमण की धमकी दी। इन्हीं बातों में पाँच वर्ष और व्यतीत हो गये। मैं इक्कीस वर्ष का हो गया। पिता ने मेरी सालगिरह बड़ी धूम के साथ की। उसके पश्चात् मैं शान्ता से मिलने चला गया। वह अब सोलह वर्ष की हो गई थी। पूर्ण-यौवन-

काल था। हमारा प्रेम भी अब लड़कपन का बालक-बालिकाओं का प्रेम नहीं रहा वरन् अब युवा और युवती का प्रगाढ़ प्रेम हो गया। उसके और मेरे पिता में जो वचन हो गये थे उसी कारण मैं उसे अपनी भावी पत्नी और वह मुझे अपना भावी पति समझने लगी थी। हम दोनों उसके उद्यान में घण्टों नाना प्रकार की बातें किया करते थे। शान्ता की माता हमारे इस प्रकार बात करने को पसन्द नहीं करती थीं। वे बहुधा इस बात पर शान्ता से झगड़ पड़ती थीं। शान्ता से मुझे इन झगड़ों का पता चला करता था। एक बार जो मैं शान्ता के यहाँ से लौटकर घर आया तो पिताजी की बहुत ही बुरी अवस्था थी। उनके मृगया करते समय घोड़े पर से गिर जाने के कारण कमर में कठिन चोट लगी थी। मेरे आने का समाचार पाते ही उन्होंने मुझे अपने पास बुला लिया और बड़े प्यार से सिर पर हाथ फेरकर कहने लगे—बेटा माधव, हमें दुख है कि हम अपने हृदय की अभिलाषायें पूरी न कर सके। बेटा, हमारे बाद एक बात का ध्यान रखना, अपने दुर्ग को पराधीन न होने देना। न्याय से कार्य करना और जहाँ तक हो सके महाराज शिवाजी का साथ देना। मेरी भविष्यद्वाणी याद रखना कि यही शिवाजी किसी समय भारतवर्ष में सबसे अधिक शक्तिशाली होंगे और इनका भारतभर में आधिपत्य होगा। इसके बाद वे कुछ कहना ही चाहते थे कि उनके कठिन शूल उठा और उनके प्राण इस पंजर को छोड़कर निकल गये। मुझे उनके शरीरान्त से इतना दुख हुआ कि मैं उदासीन हो गया। केवल दिनभर घर के एक कोने में पड़े रहने के अतिरिक्त और कोई भी कार्य नहीं करता। मन्त्रियों और सेनापतियों ने

कितना समझाया परन्तु मेरा मन शान्त न हुआ। धीरे धीरे ईश्वर की दी हुई विस्मरणशक्ति के कारण मेरा दुख कम हुआ। परन्तु घर सूना दिखाई पड़ता था। मुझे अब यह धुन समाई कि किसी प्रकार शान्ता से शीघ्र विवाह करके यहाँ लाना चाहिये। इसी विचार से मैं पूना जाने को सोच ही रहा था कि सुलतान आदिलशाह ने विदरगढ़ पर चढ़ाई कर दी। मैं बड़े चक्कर में पड़ गया फिर सब सामन्तों को बुलाया और उनकी सलाह पूछी। सबने एकमत होकर युद्ध करना ही श्रेयस्कर बताया। परन्तु ईश्वर को तो कुछ और ही करना था उनकी सलाह मुझे पसन्द न आई और मैं सभा से उठकर चला आया। सुलतान दुर्ग घेरकर पड़ गये। उनके साथ असंख्य सेना थी। मैं रात्रि को अपने बिस्तरे पर पड़ा पड़ा सोचने लगा कि क्या करना चाहिये। हृदय में किसी ने कहा—युद्ध ही भला है! परन्तु यह भी निश्चय ही था कि युद्ध करना जान-बूझकर मौत के मुँह में जाना है। इसी समय शान्ता की मनोरम मूर्त्ति मेरी दृष्टि के सामने आ गई और मुझे अपनी ओर बुलाने लगी। मेरे सामने बड़ी विषम समस्या उपस्थित थी। देश के प्रति कर्तव्य और शान्ता का प्रेमरूपी दो शक्तियाँ मेरे हृदय को अपनाने के लिए युद्ध करने लगीं। मैंने सोचा कि दुर्ग चूल्हे में जाय। यदि देश, राज्य, दुर्ग सब कुछ जाने पर भी केवल शान्ता मुझे मिल जाय तो मेरे लिए स्वर्ग इसी पृथ्वी पर है। शान्ता बिना जीवन शून्य है। यह ध्यान हृदय में आते ही कर्तव्य पराजित हो गया मैंने आदिलशाह के नाम एक पत्र लिखा और एक प्रहरी के हाथ उसे भेजकर मुसलमानों कासा वेष बनाकर दुर्ग के बाहर निकल आया। किसी भी यवन सैनिक ने मुझे अपना

ही मनुष्य समझकर कुछ भी न कहा और मैं सकुशल यवन सेना के बाहर निकल आया। उधर मेरा पत्र पाकर आदिल-शाह ने अपनी सेना को दुर्ग पर अधिकार करने भेज दिया। मेरी सेना ने उन्हें दुर्ग में जाने से रोकना चाहा और बड़े पराक्रम से युद्ध करने लगे। परन्तु कब तक? जिस समय इन्हें यह विदित हुआ कि मैं दुर्ग छोड़कर भाग गया हूँ उनका उत्साह ढीला पड़ गया। उन्होंने शस्त्र डाल दिये और मेरे पिता का वह दुर्ग मेरे देखते देखते पराधीन हो गया। हाय रे भाग्य! पिता के अंतिम आदेश का ऐसे पालन हुआ। मैं दुर्ग-श्री गवाँकर प्रेम-पथिक बना हुआ पूना पहुँचा। वहाँ ज्ञात हुआ कि मेरी कीर्त्ति मुझसे पहले ही पहुँच गई है। मुझे शान्ता के घर की चौखट के अंदर पैर रखने की भी आज्ञा नहीं है। मैं मर्माहतसा हो गया और अपना संदेशा शान्ता के पास पहुँचाने को व्यग्र हो उठा। अन्त को मेरा मनोर्थ सिद्ध हुआ। शान्ता के घर की एक बाँदी ने मेरे हाल पर दया खाई और उसने मेरा समाचार शान्ता तक पहुँचा देने का वचन दिया। शान्ता ने मुझे अपने उद्यान में बुला भेजा और मुझसे मिलने आई भी, परन्तु मेरे भाग्य ने मेरा साथ न दिया। वह मुझसे रूठकर चली गई।

इसके पश्चात् माधव ने अपना सारा वृत्तान्त जो पाठकों को विदित ही है कह सुनाया। सब कह चुकने पर उन्होंने आबाजी के बालों की पोटली वृद्धा के चरणों में रख दी और आप भी उन्हीं चरणों में गिर गये। वृद्धा ने उन्हें उठा-कर हृदय से लगा लिया और कहने लगी—बेटा माधव, मुझे तुम्हारा वृत्तान्त सुनकर तुमसे प्रेम हो गया है। तुम सोनी के परममित्र और प्रेम-पात्र थे। बेटा, तुम इस घर

को अब अपना ही घर समझो, मैं तुम्हें सोनी की भाँति ही प्यार करूँगी। मुझे तुम्हारे रहते उसकी त्रुटि का कम आभास होगा। ईश्वर तुम्हें शान्ता से शीघ्र ही मिला देगा। तुम्हारी सारी मनोकामनायें सफल होंगी।

माधव ने कहा "माँ" और वे वृद्धा की गोद में सिर रखकर फूट फूटकर रोने लगे। जब हृदय का वेग कुछ कम हुआ तो उठे और नित्य-कर्म से छुट्टी पाने में लग गये।

षोडश परिच्छेद

माधव को चम्पापुर में रहते दो मास व्यतीत हो गये। वृद्धा उन्हें अपने पुत्र की भाँति ही चाहती थी। माधव के मुख से शान्ता का वृत्तान्त उसने सुना परन्तु उसने उनसे शान्ता का नाम नहीं लिया। कारण यह कि उसने सोचा, न जाने शान्ता अब किस अवस्था में और कहाँ हो, जीवित हो या मर गई हो, कौन जाने। फिर भला उसका यहाँ रहने का वृत्तान्त सुनाकर इस नन्हेंसे बच्चे को क्यों व्यर्थ की चिन्ता में डालूँ। अच्छा है, उसे भूल जाय जिससे इसे उसके खो जाने का दुख न हो। इसी लिए उसी घर में, उसी कमरे में रहते हुए भी माधव को शान्ता के वहाँ रहने का गुमान तक भी न हुआ। आनन्द से सोते, खाते, पीते। वृद्धा के वात्सल्य ने उन्हें एक प्रकार से मुग्ध ही कर लिया था। हृदय में शान्ता की मूर्त्ति विराजमान थी। हृदय ही हृदय में उसकी पूजा करते थे परन्तु भूल से भी उस हृदय के उद्वेग को किसी पर प्रकट नहीं होने देते थे। माताजी

के सामने जब आते सदैव हँसते हुए ही। हृदय विरहाग्नि से जला करता परन्तु मुख पर हँसी के अतिरिक्त एक सिलवट भी कभी वृद्धा ने न देखी। वह समझने लगी कि माधव को शान्ता की याद भूलती जाती है। माधव सोचते कि माता स्वयं ही पुत्रशोक से दुखी हैं, उन्हें फिर अपने हृदय के शोक से क्यों और कष्ट दूँ। इसी लिए इस प्रकार इनके दिन व्यतीत होने लगे।

एक दिन माधव नित्य-कर्म से निबटकर अपने कमरे में बैठे थे कि उनका ध्यान ग्राम के सदर मार्ग की ओर आकर्षित हो गया। उन्होंने देखा कि एक अश्वारोही वेग से चला आ रहा है। वह उसकी ओर एकटक देखने लगे। वह और पास आता गया अन्त को इनके घर के सामने आकर घोड़ा रुक गया। माधव उठकर द्वार पर गए। अश्वारोही ने इन्हें देखते ही प्रणाम किया और एक पत्र इनके हाथ में रक्खा। माधव ने पत्र खोल डाला और पढ़ने लगे। पत्र समाप्त करके वे अश्वारोही को विश्राम करने के लिए कहकर गृह के अंदर चले गये। वृद्धा इस समय अपने पूजा-पाठ में लगी थी इनके पहुँचने पर उन्होंने दृष्टि उठाकर इनकी ओर देखा। माधव कहने लगे—माताजी महाराज शिवाजी का दूत यह पत्र लाया है। महाराज की आज्ञा है कि मैं तुरन्त ही उनकी सेना में उपस्थित होऊँ। अत्यन्त ही आवश्यक कार्य है। इस लिए माता मुझे आज्ञा दो, मैं इसी समय महाराज के पास जाने के लिए यात्रा करूँगा।

वृद्धा—पुत्र, जाओ स्वामी की आज्ञा पालन करो। ईश्वर तुम्हें समस्त विपत्तियों से बचाये रहें।

माधव वृद्धा के पास से चलकर अपने कमरे में आये

और शीघ्र ही यात्रा की तैयारी करके फिर माता का आशीर्वाद लेने उनके पास गये। वे पूजा समाप्त कर चुकी थीं। उन्होंने माधव को हृदय से लगा लिया। उनकी आँखों में अश्रु छलछला आये, माधव की भी आँखें सूखी न थीं। किसी स्त्री की शुभ-कामना लेकर यात्रा करने का उन्हें यह पहला ही अवसर था।

थोड़ी देर पश्चात् माधव विदा होकर अपने घोड़े पर चढ़कर महाराज शिवाजी के पास चल दिये। जब तक यह दिखाई देते रहे तब तक वृद्धा द्वार पर खड़ी इनकी ओर देखती रही। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु टपक रहे थे। जब माधव दृष्टि से ओझल हो गये तब वह भी आँखें पोंछकर घर में चली गई।

माधव घोड़ा बढ़ाये अपनी धुन में मस्त चले जा रहे थे। इस समय वह पम्पापुर से बहुत दूर एक गाँव में थे। पाठक, यह गाँव वही था जहाँ पर इन्होंने मुखिया की पुत्रियों और छोटे पुत्र का अग्नि से उद्धार किया था। अस्तु, माधव अपने ध्यान में मग्न चले जा रहे थे उन्हें अपने इधर-उधर क्या हो रहा है इसकी तनिक भी सुधि नहीं थी। सहसा उनका घोड़ा ठिठका, उन्होंने जो दृष्टि उठाकर देखा तो एक स्त्री को सामने खड़ा पाया। पीछे उसके एक पुरुष भी हाथ जोड़े खड़ा था। घोड़े के रुकते ही वे दोनों आगे बढ़ आये और उन्होंने माधव के चरण छुये। माधव किंकर्त्तव्य विमूढ़ से देखते रहे। फिर पुरुष ने आगे बढ़कर उनसे कहा—महाराज से मेरी एक प्रार्थना है, यदि आज्ञा हो तो दास निवेदन करे।

माधव—कहो, क्या कहना चाहते हो?

पुरुष—महाराज, मैं इस गाँव का मुखिया हूँ। यह मेरी स्त्री है। कुछ दिन की बात है, महाराज जब मैं किसी आवश्यक कार्य से पास के ग्राम में गया हुआ था, उस समय किसी शत्रु ने मेरे गृह में अग्नि लगा दी। उस समय यदि आप न होते तो महाराज, मेरा सारा परिवार नष्ट हो जाता। आपने अपने जीवन की कुछ परवा न करके मेरे परिवार की रक्षा की। जब मैं लौटकर आया तो मुझे अपनी स्त्री से सब हाल ज्ञात हुआ। महाराज, तभी से मैं अपने परिवार का उद्धार करनेवाले की खोज में था। आज इस समय मैं अपनी बैठक में बैठा था कि मेरी स्त्री आई और बोली कि स्वामी जिन्होंने हमारे परिवार को अग्नि में भस्म होने से बचाया था वह इसी ओर चले आ रहे हैं। सुनकर महाराज, मुझे जो हर्ष हुआ उसका वर्णन नहीं कर सकता। मैं अपनी स्त्री को लेकर आपके दर्शनों को चला आया; अब कृपया मेरे गृह पर उतरकर उसे पवित्र कीजिये।

माधव—मुखिया महाशय, मैं इस समय एक अत्यन्त आवश्यक कार्य से जा रहा हूँ, इस कारण रुक नहीं सकता, परन्तु फिर कभी जब इधर से आऊँगा तो अवश्य ही आपका आतिथ्य ग्रहण करूँगा।

मुखिया—महाराज, यह गाँव ज़ौली-राज्य के अधीन है। सुना है कि राजा साहब शीघ्र ही युद्ध में जानेवाले हैं, इस कारण महाराज मुझे भी प्रथा के अनुसार उनकी सहायतार्थ अपनी सेना लेकर जाना होगा। युद्ध से जीवित लौटूँ या नहीं? यदि मैं युद्ध में मर गया तो महाराज, मेरे जी में यही एक लालसा रह जायगी कि अपने उद्धारकर्त्ता की कुछ भी सेवा नहीं कर सका। महाराज, मैं इसी लिए आपसे

निहोरा करता हूँ कि मुझे यह भिक्षादान दीजिये। कौन जाने यही मेरी आपसे अन्तिम कामना हो।

माधव बड़े असमंजस में पड़ गये। इधर स्वामी के पास जाने की उतावली उधर एक मनुष्य का अन्तिम अनुरोध। यह सोच न सके कि क्या करना चाहिये। इसी समय उन्हें आबाजी का ध्यान हो आया, वे सोचने लगे—यह संसार कितना असार है। उस दिन प्रभु आबाजी ने भी सोचा था कि युद्ध से लौटकर माधव को अपने घर ले चलूँगा। परन्तु वे अपनी मनोकामना पूर्ण न कर सके और इस संसार से यात्रा कर गये। मुझे ही उनके शरीरान्त की ख़बर माता के पास पहुँचानी पड़ी। इसी प्रकार अब मैं इससे फिर आने का वचन दे रहा हूँ, परन्तु कह नहीं सकता कि 'फिर' कभी देखना भी नसीब हो या नहीं? नहीं मालूम कि स्वामी का क्या आवश्यक कार्य है! कदाचित् युद्ध ही पर जा रहे हों। फिर भला लौटकर वचन पूरा करने की कौन सम्भावना।

माधव को इस प्रकार आगा-पीछा करते देख मुखिया फिर कहने लगा—महाराज, व्यर्थ का सोच-विचार न कीजिये मुझ दास पर अनुग्रह करके मेरा आतिथ्य स्वीकार कर लीजिये। मैं यह नहीं कहता कि आप अधिक देर ठहरें, क्योंकि ऐसा होने से आपके कार्य में विलम्ब हो जाने की सम्भावना है। परन्तु थोड़ी देर दास के कहने से कष्ट उठाने पर प्रभु के कार्य में कोई अधिक विलम्ब नहीं होगा। प्रभु, यदि आप मेरा आतिथ्य ग्रहण न करेंगे तो मैं प्राण त्याग दूँगा। यदि आप जाते ही हों तो पहले मुझे मार दीजिये, फिर चले जाइये।

माधव उसका इतना अनुरोध देखकर घोड़े से उतर पड़े। मुखिया का मुख प्रसन्नता से चमकने लगा। उसने घोड़ा पकड़ लिया और एक मनुष्य को बुलाकर सौंप दिया। फिर आप माधव को लेकर अपने घर में चला गया। वहाँ माधव को भाँति भाँति के पदार्थों का भोजन कराया, फिर उनकी अत्यन्त श्रद्धा से और सेवा की। दोपहर का समय था, भोजन के उपरान्त माधव को कुछ नींदसी आ लगी। वे थके तो थे ही कुछ देर आराम करने के लिए लेट गये। लेटते ही प्रगाढ़ निद्रा ने उन्हें आ दबाया। सूरज डूबने में कोई दो घड़ी की देर होगी जब माधव उठे। झटपट उन्होंने मुँह-हाथ धोकर अपना घोड़ा मँगवाया और उस पर सवार हो गये। चलते समय मुखिया ने कहा—महाराज, कभी कोई आवश्यकता हो तो विनायकराव को अवश्य ही याद कीजियेगा।

माधव ने हँसते हुए घोड़ा बढ़ा दिया। घोड़ा और यह दोनों विश्राम ले चुके थे बस पवनवेग से चले। जिस समय माधव रायगढ़ पहुँचे, रात घड़ीभर व्यतीत हो चुकी थी। प्रायः दुर्ग-द्वार संध्या होते ही बन्द हो जाया करता था परन्तु रायगढ़-दुर्ग का फाटक अभी तक खुला था। प्रहरी सतर्क बैठे थे। माधव ने जिस समय दुर्ग में प्रवेश किया उसी समय चूँ चूँ शब्द करता फाटक बन्द हो गया। माधव आगे बढ़े उसी समय एक प्रहरी ने आगे बढ़कर इन्हें सैनिक नियम से अभिवादन किया और कहा—महाराज, शीघ्र ही चले जाइये। महाराज शिवाजी बड़ी देर से आपकी राह देख रहे हैं।

माधव उसी क्षण शिवाजी के महल की ओर चल दिये। वहाँ फिर प्रहरी ने इनका अभिवादन किया और यह अन्दर चले

गये। महाराज शिवाजी अपनी बैठक में इधर-उधर टहल रहे थे। माधव के पैर की चाप सुनकर उन्होंने ऊपर को दृष्टि उठाकर देखा। माधव को आते देख वह रुक गये और बोले—आओ माधव, मैं तुम्हारा बाट बहुत देर से देख रहा था। देर कैसे हो गई। कुशल से तो रहे न ?

माधव—धर्मावतार, राह में मुझे एक व्यक्ति ने रोक लिया, इस कारण आने में विलम्ब हो गया। अपराध तो हो ही गया है परन्तु आशा है प्रभु उसको क्षमा कर देंगे।

शिवाजी—(हँसकर) कहो आबाजी की माताजी तो कुशल से हैं न ?

माधव—जी हाँ, माताजी कुशलपूर्वक हैं।

शिवाजी—परन्तु माधव! तुम सोचते होगे कि हमने तुम्हें इतने शीघ्र तो बुलाया परन्तु अब तुमसे काम की बातें न करके इधर-उधर की बातें क्यों कर रहे हैं। सुनो, हम तुम्हें यहाँ बुलाने का कारण बता देना चाहते हैं। तुम्हें ज्ञात ही है कि अब केवल ज़ौली के राजा चन्द्रराव को छोड़-कर सारे राजों और क़िलेदारों ने मुझे अपना राजा मान लिया है। केवल चन्द्रराव ही अब तक हमारा विरोध किये जाते हैं। उनकी सारी चालें हमारे काट की होती हैं। तुम्हें याद होगा कि हमने पहले भी कई बार उन्हें समझाने की चेष्टा की, परन्तु उन्होंने हमारा कहा नहीं माना वरन् उलटा उजड्डुसा उत्तर दे दिया। परन्तु हमने हिन्दू होने के कारण उनके उस उत्तर का बुरा नहीं माना वरन् सुनकर टाल दिया। जिससे उनकी हिम्मत और भी बढ़ गई। उन्होंने हानि पहुँचाने की ठानी है। हमें ज्ञात हुआ है कि वह सेना एकत्रित करके अपना आधिपत्य जमाने का उद्योग करनी

चाहते हैं। हम तुम्हें उनसे सन्धि करने के लिए भेजना चाहते थे। इस कारण नहीं कि हम चन्द्रराव की सेना से भय खाते हैं वरन् इस लिए कि हमें हिन्दू-सेना का रक्त बहाना अभीष्ट नहीं है। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई व्यक्ति हमें इस काम के लिए नहीं सूझा। परन्तु जब तुम नहीं आये तो लाचार होकर हमने राघो बोलाल और शम्भूजी काऊजी को भेजा है। परन्तु हमें उनसे कुछ भले की आशा नहीं है। काऊजी अत्यन्त ही क्रोधी हैं। कहीं उसे क्रोध आ गया तो न-जाने क्या कर बैठे। खैर, जो हो ईश्वरेच्छा!

माधव—धर्मावतार, दास से देर हो जाने से बड़ा अपराध हुआ। अब दास को जो आज्ञा हो वह करे।

शिवाजी—हमारी समझ में माधव, तुम भी चले जाओ और देखो यदि किसी प्रकार हो सके तो चन्द्रराव को हमारा विरोधी होने से बचा लो। व्यर्थ हिन्दू-वीरों को क्यों हानि हो। यदि हम यों ही एक दूसरे से आपस में ही लड़ते रहे तो भारत में फिर से हिन्दू-राज्य स्थापित होना सर्वथा असम्भव हो जायगा।

माधव—महाराज, मैं अभी जाता हूँ और आपकी आज्ञा पालन करता हूँ।

शिवाजी—नहीं, अब तुम जाकर विश्राम करो, परन्तु सूर्योदय के पहले ही यात्रा कर देना। हम भी पीछे से सेना-सहित आवेंगे। कदाचित् आवश्यकता ही हो।

माधव—जैसी प्रभु की आज्ञा, परन्तु विलम्ब होने से कहीं कार्य में विघ्न न हो जाय।

शिवाजी—नहीं, जैसा मैं कहूँ वैसा ही करते जाओ।

माधव—जो आज्ञा।

सप्तदश परिच्छेद

पाठक, बहुत दिनों से हमें शान्ता की कोई ख़बर नहीं मिली। आइये, चलकर देखें तो क्या हाल है। जब मनोरमा शान्ता को लेकर बीजापुर को चली उस समय शान्ता संज्ञा-हीन थी। जब उसे चैतन्य लाभ हुआ तो उसने अपनेआपको बीजापुर में उसी कमरे में लेटा पाया जहाँ आज से कुछ महीने पहले उसने पहली बार बीजापुर में आँख खोली थी। मनोरमा उसके पास ही बैठी थी। शान्ता को आँखें खोलते देख वह उठकर उसकी शय्या के पास चली आई और प्रेम से उसके माथे पर हाथ फेरने लगी। ज्वर के कारण माथा तप रहा था। शान्ता ने धीरे धीरे करवट लेनी चाही तो उसे घाव में बड़ी पीड़ा होती मालूम पड़ी और साथ ही बड़ी निर्बलता का आभास हुआ। वह फिर वैसे ही लेट गई और मनोरमा से पूछने लगी—बहन, मैं यहाँ कैसे आ गई, युद्ध से मुझे यहाँ कौन उठा लाया, युद्ध में परिणाम क्या हुआ। चाकन पर अपना ही अधिकार है न?

मनोरमा—बहन, तुम्हारे चोट लगने के पश्चात् तुम्हें लेकर तो मैं यहाँ चली आई, परन्तु युद्ध का परिणाम कुछ अच्छा न हुआ दुर्ग हाथ से निकल गया, प्राणेश को युद्ध से भाग-कर यहाँ आना पड़ा, क्या करते। यों तो युद्ध में प्राण दे सकते थे परन्तु उसमें फिर दुर्ग हाथ आने की सम्भावना न रह जाती इसी लिए चले आये।

शान्ता—बहन, यह तो सब ठीक है, परन्तु तुमने मुझे युद्ध भूमि से यहाँ लाकर अच्छा नहीं किया। यह मैंने मान लिया कि वहाँ पड़े रहने से मेरे प्राण निकल जाते परन्तु

उसमें भी मुझे सुख ही मिलता। युद्ध विजय-करके प्राणेश शवों को देखने अवश्य ही आते। कदाचित् उस समय तक मुझमें एक दो साँस रह ही जातीं और उन्हीं अंतिम साँसों में ही मुझे उनके दर्शन हो जाते अथवा मरने के पश्चात् मेरी शव ही उनके दर्शन कर लेती। भगिनी, तुमने मुझे यहाँ लाकर मुझे उनके दर्शन-सुख से वंचित कर दिया। यह माना कि मेरी जीवन-रक्षा हो गई परन्तु मैं उनके दर्शनों के लिए ऐसे ऐसे यदि हज़ार जीवन भी हों तो दान दे सकती हूँ।

मनोरमा—बहन, शान्ति धारण करो। अभी तुम अत्यन्त ही क्षीण शक्ति हो कहीं ऐसा न हो कि उत्तेजित होने से फिर तुम्हारे घाव हरे हो जायँ और तुम्हारी अमूल्य जान के लाले पड़ जायँ। प्यारी बहन, यदि तुम्हें कहीं कुछ हो गया तो न-जाने शोक से मेरी क्या दशा होगी।

इसी समय एक दासी ने आकर कहा कि महारानीजी, आपको अन्नदाताजी ने याद किया है। मनोरमा यह सुनकर उठी और शान्ता से क्षमा प्रार्थना करती हुई बाहर चली गई। शान्ता अकेली पड़ी पड़ी सोचने लगी—हा दैव! कैसी उलझन में डाल रक्खा है। सरोवर-तट तक जाकर बिना पानी पिये ही प्यासे लौट आना पड़ा। न-जाने इस जीवन में इन नेत्रों की प्यास बुझेगी या नहीं। आयु के दिन एक एक कर व्यतीत होते जाते हैं। यौवनकाल बुढ़ापे को स्थान दिये देता है। हमारा यह यौवनकाल व्यर्थ ही गया। इससे तो मृत्यु ही भली थी। दैव! किसी प्रकार की झंझट तो नहीं होती। कहते हैं कि आरा-धना करने से परमेश्वर भी मिल जाता है परन्तु कहाँ? मैंने तो मन-वचन-कर्म से अपने आराध्य देव की उपासना की परन्तु निष्फल। जैसे वे मुझसे और भी दूर चले गये हों।

मेरी आशा-लता अब सूख चली है परन्तु उसमें कभी फल नहीं आया। मैंने इसे कितना ही अश्रु-जल से सींचा परन्तु कभी इसे हरा-भरा न देखा। मेरे हृदयरूपी जंगल में कभी वसंतऋतु न फूली, सदा पतझाड़ ही रहा। हा! मैं उद्योग करती हूँ परन्तु प्रारब्ध साथ नहीं देता। शान्ता, सच कह तैंने कौनसा उद्योग उनके पाने का किया है? कोई भी नहीं। यह माना कि तू मन-वचन-कर्म से उनसे प्रेम करती है परन्तु निरे चाहने से ही तो आराध्य वस्तु नहीं मिल जाती। उसके पाने के लिए उद्योग भी करना पड़ता है। तू तो अभी तक दूसरों के भरोसे पर ही बैठी है तैंने अपनेआप कार्यक्षेत्र में उतरकर कौनसा कार्य किया है जो वे तुझे मिल जाते। अरे मूर्खा! ईश्वर प्रारब्ध इत्यादि सबको तो दोष दे गई परन्तु अपने को दोष नहीं दिया, जो हाथ पर हाथ धरे निरुद्योगी बन बैठी रही। उद्योग से बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं है। यदि मनुष्य उद्योग करे तो क्या नहीं कर सकता। आलसी! तनिक अपने शरीर को हिला, उठ, देख तो फिर तेरी मनोकामना कैसे पूरी नहीं होती!

इतना सोचते ही शान्ता के हृदय में एक प्रकार का विश्वाससा जम गया कि अवश्य ही उसकी मनोकामना पूरी हो जायगी। उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि या तो मैं उद्योग करके उन्हें पा ही लूँगी या इसी पुण्यकार्य में प्राण त्याग दूँगी। अब किसी दूसरे के भरोसे इस प्रकार हाथ पर हाथ धरे न बैठी रहूँगी। जब वह यह प्रतिज्ञा कर चुकी तो उसे अपना हृदय कुछ हलका प्रतीत होने लगा। ऐसा ज्ञात हुआ जैसे किसी ने एक बड़ा भारी बोझ हृदय पर से उठा लिया हो। जिस समय मनोरमा लौटकर आई उस समय

शान्ता सो रही थी और उसके मुख पर मुसकुराहट यह कहे देती थी कि वह इस समय सुख-निद्रा में है। कदाचित् वह उस समय स्वप्न में माधव को आलिंगन कर रही हो, कौन जाने! मनोरमा शान्ता को सोती देखकर लौट गई।

उसी दिन से शान्ता की दशा सुधरने लगी। वह शीघ्र आरोग्यता की सीढ़ी पर चढ़ने लगी और अन्त को एक दिन शय्या से उठ ही बैठी। यह उसका पुनर्जन्म हुआ।

शय्या से उठते ही शान्ता को अपनी प्रतिज्ञा कार्य में परिणत करने की धुन लगी। वह भाँति भाँति की रीति सोचती परन्तु उसके मन में एक भी न बैठती। एक दिन संध्या-समय वह इसी उधेड़-बुन में अपने कमरे में बैठी थी। पास के कमरे में जाने का द्वार कुछ खुला हुआ था। शान्ता को दो व्यक्तियों की बातचीत का शब्द सुनाई दिया। उसका ध्यान उस ओर नहीं था परन्तु फिर भी एकआध टूटा फूटा-शब्द उसे सुनाई दे ही जाता था। बातचीत एक स्त्री और पुरुष में हो रही थी। उनके बोलचाल के ढग से शान्ता ने पहचाना कि मनोरमा और फिरंगजी हैं। फिरंगजी कुछ कह रहे थे परन्तु शान्ता ने इतना ही सुना कि "लो, शामत आई।" उसका ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया और यह सोचकर कि कदाचित् इन्हीं पर कोई ऐसी आपत्ति आई है या आनेवाली है जिसे यह मुझसे बताना नहीं चाहते वह सुनने लगी—

मनोरमा—क्यों प्राणेश, क्या सचमुच ही शिवाजी उनको भी न छोड़ेगा। क्या वह हम सबको परास्त करने पर तुला हुआ है।

फिरंगजी—हाँ प्रिये, यह सच ही है। दूत द्वारा समाचार मिला है कि शिवाजी अपनी सेना लेकर अब की ज़ौली पर चढ़ने चला है। अब बस हम स्वतन्त्र राजों में चन्द्रराव ही

रह गये हैं वह भी अब गये ही समझो। शिवाजी की शक्ति के सामने जब मैं ही नहीं ठहर सका तो चन्द्रराव भला क्या चीज़ हैं।

शान्ता ने फिरंगजी की बात सुनी और उसने अपना कार्यक्षेत्र चुन लिया। बस, वह अपने विचार को पूरा करने के लिए व्याकुल हो उठी। वह तुरन्त ही फिरंगजी के पास चली गई और कहने लगी-भाई फिरंगजी, मैंने विचारकर देखा है कि इस प्रकार निष्कर्मा होकर बैठने से मेरा काम नहीं चलेगा, मैंने अब तक तुम्हारे साथ रहकर जो कष्ट दिये हों उनकी क्षमा चाहती हूँ। अब मैंने अपने लिए मार्ग निश्चय कर लिया है। उस मार्ग पर चलकर मैं या तो उन्हें पा ही जाऊँगी और यदि न पा सकी तो उन्हें पाने का उद्योग करती करती ही मर जाऊँगी।

फिरंगजी शान्ता की बात सुनकर पहले तो अचम्भे में आ गये परन्तु फिर कुछ सोचकर कहने लगे—बहन, तुम्हें कष्ट उठाने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम यहाँ आनन्द से रहो, मैं माधवराव की खोज में जाता हूँ।

शान्ता—नहीं भाई, मुझे कर्तव्य-पथ से डिगाने की चेष्टा न करो। मैंने निश्चय करके प्रण कर लिया है कि मेरा स्थान यहाँ नहीं वरन् स्वामी के साथ युद्ध-भूमि में है। भला सोचो तो यह क्या यह भला लगता है कि वह तो युद्ध-भूमि में कष्ट झेलें और मैं यहाँ आनन्द करूँ? छीः! धिक्कार है मुझ पर! नहीं भाई, इतने दिन के बाद आज ही मुझे मेरा कर्तव्य दिखाई दिया है। अब मैं इससे विचलित नहीं हो सकती। मैं वेष बदलकर उन्हें अपनाने की चेष्टा करूँगी। अब मैं यहाँ कदापि न रहूँगी।

मनोरमा और फिरंगजी ने बहुतेरा समझाया परन्तु शान्ता ने एक न मानी और मर्दाने वस्त्र पहन शस्त्रों से सुसज्जित हो चल ही दी।

जिस दिन माधव ज़ौली को गए उसी दिन एक नया सैनिक शान्तवीरसिंह महाराज शिवाजी की सेना में सम्मिलित हो गया।

अष्टदश परिच्छेद

पाठक आइये, हम आपको आज संसार का एक और परिवर्तन दिखाने ले चलें। देखिये, वह सामने ज़ौली का दुर्ग है। अरे तनिक बचकर तो चलिये, देखिये आप अभी दबने से बाल बाल बच गये। क्या पूछा था क्या? अरे भले आदमी क्या तुमने नहीं देखा कि दो अश्वारोही खटाखट तुम्हारे पास से निकल गये। वह देखो, वह सामने जो धूल उड़ रही है उन्हीं के घोड़ों की टापों के धूलमय पृथ्वी पर पड़ने का फल है। अरे यह तो सीधे ज़ौली के दुर्ग की ओर को घोड़ा बढ़ाये चले जाते हैं। पाठक, मेरे मस्तिष्क में सुरसुराहट हो रही है। मुझे तो इनका इस प्रकार जाना अवश्य ही रहस्यमय जान पड़ता है लीजिये अब मैं तो बिना इनका रहस्य जाने यहाँ से जाता नहीं, मेरे मस्तिष्क की सुरसुराहट और बढ़ गई है आप चाहे मेरे साथ चलें या नहीं, मैं तो इनके पीछे पीछे जाता हूँ। क्या कहा, तुम भी मेरे साथ ही चलोगे? खूब! परन्तु शीघ्र

शीघ्र चलो, कहीं वह दुर्ग के भीतर जायँ और दुर्ग-द्वार बंद हो जाय तो हमें बाहर ठंड में ही रात्रि बितानी पड़े। अरे वाह रे हम, क्या हवा के घोड़े पर आये हैं। लो, विना परिश्रम अश्वारोहियों से प्रथम ही फाटक के अंदर आ गये! लीजिये, वे दोनों भी आ पहुँचे, परन्तु दोनों का बुरा हाल है। घोड़े पसीने में तराबोर हो रहे हैं। सवार भी किसी प्रकार अच्छी अवस्था में नहीं हैं। दोनों ने फाटक पर पहुँचकर एक अघा-कर साँस ली। साथ हीं प्रहरी ने टोका—"कौन आता है खड़े हो जाओ।" दोनों खड़े हो गये और संकेत द्वारा सैनिक को अपने पास बुलाया, जब वह निकट आ गया तो एक कहने लगा—प्रहरी जाओ अपने सेनानायक से कहो कि हम लोग महाराज शिवाजी के दूत हैं अपने प्रभु के पास से तुम्हारे राजा के लिए एक आवश्यक संदेश लाये हैं।

प्रहरी यह सुनकर चला गया और थोड़ी देर पश्चात् अपने नायक को बुला लाया। उसने आकर इनसे कई प्रश्न किये, जब कोई संदेह नहीं रहा तो शिष्टाचार के साथ उन्हें दुर्ग के अन्दर ले गया। दोनों अश्वारोही अतिथि-गृह में ठहरा दिये गये क्योंकि रात्रि अधिक जा चुकी थी, इस कारण वे दोनों उस समय विश्राम करने लगे, प्रातःकाल ही दोनों उठे। नित्यकर्म से निबटकर राजा चन्द्रराव से मिलने चले। सूर्य प्रकाश में अपनी ज्योति फैलाने लगे थे। जिस समय ये ज़ौली की राज-सभा में पहुँचे, सभाभवन सूना पड़ा था। इन लोगों ने पहुँचकर अपने आने की ख़बर दी और राजा साहब के आने की प्रतीक्षा में बैठ गये, सिंहासन के पीछे एक परदा पड़ा था, वह कदाचित् राजा साहब के महल में जाने का मार्ग हो, दोनों व्यक्ति उसी परदे की ओर देखने

लगे, थोड़ी देर पश्चात् परदा हिला और उसमें से दो सैनिक नग्न खड्ग लिये हुए निकल आये और आकर सिंहासन के पीछे दोनों ओर चुपचाप मूर्त्तिवत् खड़े हो गए। हमारे अश्वारोहियों की दृष्टि जिन्हें पाठक अब पहचान गए होंगे कि शिवाजी के भेजे हुए राघो बोलाल और शम्भूजी काऊजी हैं। अब भी उसी परदे पर जमी हुई थी। थोड़ी देर पश्चात् फिर परदा हिला और राजा साहब के मन्त्री हिम्मतराव और दो राजकुमार हरदेवराव और गिरिधरराव आकर सिंहासन के इधर-उधर खड़े हो गये। हमारे दूतगण अब और भी उत्कण्ठा के साथ उस परदे की ओर देखने लगे। थोड़ी देर पश्चात् एक शंख-ध्वनि सारे वायु-मंडल में पूरित हो गई। सिंहासन के पीछे के सैनिक अचल खड़े हो गए। शेष व्यक्ति सिर झुकाकर चुपचाप खड़े हो गए। इसी समय फिर शंख बजा और परदा खुल गया। साथ ही राजा चन्द्र-राव धीरे धीरे चलकर अपने सिंहासन पर बैठ गये। हमारे अश्वारोहियों ने भी सिर झुका लिया था। चन्द्रराव ने पहले इन दोनों को ऊपर से नीचे तक देखा फिर कहने लगे—कहिये दूतगण, आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ, कहिए शिवाजी ने आपको किस उद्देश्य से हमारे पास भेजा है ?

महाराज शिवाजी को महाराज न कहकर चन्द्रराव ने केवल शिवाजी ही कहा, यह बात शम्भूजी काऊजी और राघो बोलाल को अत्यन्त ही बुरी ज्ञात हुई परन्तु अपना क्रोध दमन करते हुए राघो बोलाल बोले—राजा साहब, हमारे स्वामी राजाधिराज छत्रपति महाराज शिवाजी ने हमें आपके पास इस लिए भेजा है कि आप अपना मिथ्या

अभिमान छोड़ दें और महाराज शिवाजी को अपना महाराज मान लें। हमारे स्वामी का उद्देश्य भारतवर्ष से यवनों को निकालकर फिर से हिन्दू-राज्य स्थापित करना है। वे यह नहीं चाहते कि व्यर्थ ही हिन्दू रक्त बहाकर अपनेआपको प्रायश्चित्त का भागी बनायें, आपस की फूट से महत्त्व-कार्य में बाधा पड़ने की सम्भावना है। इस कारण महाराज, चाहते हैं कि आप उन्हें महाराज, मानकर इस महत्त्व-कार्य में उनका हाथ बटावें। महाराज अपना उद्देश्य अवश्य पूर्ण करेंगे और यदि आवश्यकता पड़ेगी तो उनकी खड्ग उनके उद्देश्य के उद्धारार्थ सर्वदा तत्पर रहेगी।

चन्द्रराव—मैं शिवाजी की इस आशा को केवल आकाश-कुसुममात्र मानता हूँ और आकाश-कुसुम की चाह करनेवाला मूर्ख या पागल के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है। तुम लोग अपने स्वामी के पास लौट जाओ और उनसे कह देना कि राजा चन्द्रराव एक डाकू का न आधिपत्य ही स्वीकार कर सकता है और न उसका सहकारी ही हो सकता है। हाँ, यदि आवश्यकता हो और डाकू अधिक उपद्रव करे तो उसका दमन अवश्य कर सकता है। रहा हिन्दू-राज्य का स्थापित करना वह केवल उसकी दुराशामात्र है। यदि ईश्वर हिन्दू-राज्य ही रखना चाहता तो हिन्दू-राज्य नष्ट ही क्यों होता। यह कलिकाल है, इसमें सब उलटा ही होगा। तुम शिवाजी से जाकर कह देना कि यदि उसकी इच्छा हो तो वह उस मृगतृष्णा के पीछे भटके, परन्तु ज़ौली की ओर का ध्यान छोड़ दे। यदि उसने इधर को दृष्टि की तो राजा चन्द्रराव को डाकू को दंड देने के लिए विवश होना पड़ेगा। जाओ यही हमारा उत्तर है।

यह उत्तर सुनकर शम्भूजी का क्रोध चढ़ आया। उनका मुँह रक्तवर्ण होगया, आँखों से अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं। महाराज शिवाजी को उनकी उपस्थिति में डाकू इत्यादि शब्द कहा जाय और फिर भी जीता ही बच जाय? उनका मन करने लगा कि इसी समय प्रहरी के हाथ से खड्ग छीन लूँ और इस अभिमानी का सिर धड़ से अलग कर दूँ। राघो बोलाल को भी क्रोध आ रहा था परन्तु वे शम्भूजी की भाँति क्रोध से काँप नहीं रहे थे। वे किसी प्रकार प्रयत्न करके अपनी क्रोधाग्नि को दमन किये हुए थे। वे अभी अपना कर्तव्य भी निश्चय न कर पाये थे कि उसी समय फिर शंखध्वनि हुई और राजा चन्द्रराव उठकर फिर उसी द्वार के पीछे चले गये। उनके पीछे और लोग भी जाने लगे, उस समय राघो बोलाल को चैतन्य हुआ। चिल्लाकर कहने लगे-अभिमानी, याद रखना तुझे शीघ्र ही अपने अभिमान और कटुवाक्य के लिए पछताना पड़ेगा!

राघो बोलाल इतना कह शम्भूजी का हाथ पकड़कर सभाभवन के बाहर आ गये। शम्भूजी इस समय भी क्रोध से पागल हो रहे थे।

जिस समय यह अपने डेरे पर पहुँचे उस समय सूर्य भगवान् मध्याकाश में पहुँचने का प्रयत्न कर रहे थे, उनके रथ के तुरंग भी अपने स्वामी की अभिलाषा जान बड़े वेग से मार्ग तय कर रहे थे। अपने स्थान पर पहुँचकर शम्भूजी कहने लगे—राघो, तुम अत्यन्त ही कायर हो। महाराज की निन्दा करनेवाले की जिह्वा वहीं खींचकर बाहर निकाल लेनी चाहिये थी। तुम महाराज की निन्दा सुना किये परन्तु कुछ कर नहीं सके!

राघो—शम्भूजी, शान्त हो। उतावली से सदैव ही कार्य बिगड़ जाता है। मुझे इस नीच अभिमानी राजा पर अत्यन्त ही क्रोध आ रहा है। मैंने वहाँ कुछ इसी लिए नहीं किया कि न-जाने विना सोचे-समझे कार्य कर बैठने का क्या परिणाम हो।

शम्भू—छिः! तुम बड़े ही मूर्ख हो। कौन मुँह लेकर महाराज के पास जाओगे और उन्हें उस पिशाच के वाक्य सुनाओगे। क्या सब यही नहीं कहेंगे कि ऐसे वचन सुनकर लौट आने से तुम्हें स्वयं ही मर मिटना भला था। बुराई करनेवाले को जीता ही छोड़ दिया! क्या लज्जा नहीं आती। उस समय सेना में क्या मुँह दिखाओगे। हमें महाराज ने एक कठिन कार्य सौंपा था। उनको आशा थी कि हम उसे पूरा करेंगे। उस कार्य के पूरा करने के बदले हम उन्हें यह समाचार सुनायें और उस नीच का शिर साथ न ले जायँ तो महाराज हमें क्या समझेंगे। तुमने आगा-पीछा करके सब कार्य बिगाड़ दिया। अब साँप निकल गया, व्यर्थ लकीर को पीटा करो। छिः!

राघो—(उत्तेजित होकर) शम्भूजी, बस अधिक कुछ मत कहिये। साँप निकल गया तो कोई चिंता नहीं। मैं साँप का बिल खोदकर उसे निकाल लाऊंगा। मैं यज्ञोपवीत हाथ में लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक इस विषधर सर्प का सिर न कुचल दूँगा अन्न नहीं खाने का।

शम्भूजी—तथास्तु!

इसके पश्चात् दोनों में धीरे धीरे कुछ सलाह होने लगी। जिसे हम दूर होने के कारण सुन नहीं सके, परन्तु हाव-भाव से इतना अवश्य समझ गये कि ये दोनों किसी कर्तव्य-पथ का निश्चय करने पर तुले हुए हैं। थोड़ी देर पश्चात् दोनों

उठे और अपना सामान बाँधकर रख दिया। उसके पश्चात् राघो बोलाल दुर्गरक्षक के पास गये और उससे दुर्ग के बाहर जाने का आज्ञापत्र ले आये। फिर दोनों अपने घोड़ों पर चढ़कर एक ओर चल दिये।

एकोनविंशति परिच्छेद

प्रयत्न कभी निष्फल नहीं जाता। सूर्य भगवान् के रथ के घोड़ों का भी प्रयत्न निष्फल नहीं गया। उन्होंने बात की बात में रथ को मध्याकाश में ला खड़ा किया। सारा देश तप्त हो उठा। हमारे दोनों अश्वारोही नगर के बाहर निकलकर दुर्ग द्वार की राह छोड़कर एक ओर मुड़ गये। थोड़ी देर पश्चात् ये एक निर्जन स्थान में पहुँच गये। यह स्थान राजा चन्द्रराव के महल की चहारदीवारी के ठीक पीछे था। दोनों अपने घोड़ों पर से उतर पड़े और उन्हें पास ही एक टूटे मंदिर में बाँध आये। फिर दोनों दीवार के पास जाकर उसे देखने लगे। यद्यपि दीवार ऊँची थी तो भी अन्दर के प्रासादों के कलश दृष्टिगोचर होते थे। ये दोनों ऊपर को देखते हुए दीवार के सहारे कुछ दूर तक चले, फिर एक स्थान पर खड़े होकर आहट लेने लगे। जब कुछ सुनाई न दिया तो राघो बोलाल ने अपनी कमर से एक रस्सी खोली और उसे दीवार पर फेंका। फंदा दीवार में अटक गया और यह दोनों दीवार पर चढ़ गये। दीवार ऊपर हाथभर मोटी थी। दोनों लेटकर नीचे की ओर

देखने लगे। मध्यान्‌-काल था। धूप की गर्मी से व्याकुल होकर महल के नौकर-चाकर आराम कर रहे थे। प्रहरीगण भी कुछ देर सुस्ता लेने को शायद किसी छायादार वृक्ष के नीचे जा बैठे थे। सामने सुन्दर बाग़ था। मैदान साफ़ देखकर ये दोनों धीरे धीरे नीचे उतर आये और एक वृक्ष की आड़ में खड़े होकर चारों ओर देखने लगे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। किसी भी मनुष्य के चलने-फिरने का शब्द सुनाई देता न था। इसी समय पीछे से एक शब्द सुनकर ये चौंक पड़े। दोनों उछलकर अलग खड़े हो गये और अपने हाथ खड्ग पर रख लिये। फिर पीछे की ओर देखा तो दोनों हँसी को न रोक सके। इन्होंने देखा कि दो प्रहरी एक घनी झाड़ी के नीचे साये में अचेत पड़े सो रहे हैं। वह चौंका देनेवाला शब्द उनके खर्राटों का शब्द था। ये धीरे धीरे उनके पास पहुँचे और झटपट दोनों के मुँह बाँध दिये जिससे वे बेचारे कुछ बोल भी न सकें; और फिर दोनों के कपड़े उतारकर आप पहन लिये। फिर उन्हें मज़बूती से बाँधकर एक झाड़ी में छिपा आये। ये इस काम से निबटे ही थे कि इन्हें पैरों की चाप सुनाई दी। दोनों चौकन्ने होकर चारों ओर देखने लगे। सामने से सैनिकों की एक टोली चली आ रही थी। इन्होंने कुछ दूर पर से ही अपनी आवाज़ छिपाते हुए ललकारा—"कौन आता है? खड़े हो जाओ।" उस टोली में से एक ने कहा—"स्वतन्त्रता!" ये दोनों चुपचाप खड़े हो गये। सैनिकों की वह टोली निकल गई। इनकी जान में जान आई। यह अभी अपने भाग्य की सराहना ही कर रहे थे कि इन्हें एक स्त्री के पैरों की चाप सुनाई दी और एक दासी इनके सामने

आकर खड़ी हो गई। वह इनकी ओर बड़े ध्यान से देखने लगी। दोनों का हृदय धक् धक् करने लगा। और सोचने लगे, इसने संदेह तो नहीं किया। इतने में बाँदी ने पूछा—संकेत ?

ये—स्वतन्त्रता।

बाँदी का मुँह खिल गया। उसने कहा—सैनिकगण, महाराज भोजन के उपरान्त विश्राम कर रहे हैं। जाओ वहाँ पर पहरा दो।

दोनों का हृदय खुशी से उछल पड़ा, मानो अन्धे को आँखें मिली हों। परन्तु साथ ही यह सोचकर हृदय बैठ गया कि स्थान तो परिचित है ही नहीं, पहरा कहाँ देने जायँ। इसी उधेड़-बुन में ये दोनों उस बाँदी के पीछे पीछे चल पड़े। कुछ सोचकर राघोबोलाल ने कहा—यदि आप हमें हमारा स्थान बता देतीं तो अच्छा था, हम दोनों महाराज की सेवा में अभी आये हैं। अब तक द्वार पर हमारा पहरा था, इस कारण हम राह भूल गये हैं।

बाँदी ने एक बार शंकित नेत्रों से इनकी ओर देखा, परन्तु इन्होंने ऐसी सूरत बनाई कि उसकी शंका मिट गई। वह समझने लगी कि यह मुझ पर मुग्ध हैं और मुझसे न विछुड़ने के लिए ही यह बहाना कर रहे हैं। वह मुसकुराई और इनके आगे आगे चल दी। वाहरे रमणी! तेरी माया भी विचित्र है। ज़रा किसी ने तेरी ओर हँसकर देखा कि तूने समझा तेरे नैनरूपी बाणों से घायल हो गया। तनिक किसी ने प्रेम दिखाया कि तू अपने को भूल गई? यह भी नहीं सोचा कि उस प्रकार इस प्रेम दिखाने में उसका आशय क्या है। हायरे स्त्री-जाति! तुझमें कितना अहंकार है। कितनी आत्मप्रशंसा की चाह है? तनिक किसी ने प्रशंसा की कि तू मुग्ध हुई!

हायरे नारी ! तेरी इसी वासना-तृप्ति के लिए संसार में न-जाने कितने अनर्थ होते हैं। अस्तु, हमारे अश्वारोहियों की एक चितवन ने ही दासी की आत्म-प्रशंसा-प्रवृत्ति में आहुति डाल दी। वह प्रसन्न होकर सैनिकों के आगे आगे चली। राजशयनागार के द्वार पर जाकर वह रुक गई और मुसकुरा कर धीरे से बोली—लो अब सावधानी से रखवाली करना। मैं जाती हूँ, मुझे अभी रानीजी के पैर दबाना है।

उसकी शंका न बढ़ जाय इस लिए राघो बोलाल हँसकर कहने लगे—अच्छा, परन्तु फिर भी कभी दर्शन देना।

एक कटाक्ष-बाण फेंककर मुसकुराती हुई दासी चली गई। उसके जाते ही हमारे दोनों सैनिक धीरे धीरे आपस में वार्तालाप करने लगे—शम्भूजी—भगवान् ने मुझे प्रतिज्ञा पूर्ण करने का शीघ्र ही अवसर दे दिया। लो, अब शीघ्रता करना उचित। है कहीं ऐसा न हो कि कोई आजाय और हमें पहचान ले तो सारा खेल मिट्टी हो जाय। लो तुम सतर्क होकर द्वार की रखवाली करो मैं इस पामर का अभिमान चूर्ण करने जाता हूँ।

राघो बोलाल यह कहकर शयनागार में घुस गये। राजा चन्द्रराव अपने पलंग पर सुख-निद्रा में सोये हुये थे। राघो कुछ देर तक तो उनकी ओर इस भाँति देखते रहे जैसे भूखा बाघ किसी दुर्बल पशु की ओर देखता है। फिर उसने एक लात राजा के मारी। राजा चौंककर उठ बैठा तो देखता क्या है कि एक सैनिक नग्न खड्ग हाथ में लिये उसके पास खड़ा है। राजा को उठा देख राघो बोलाल कहने लगे—चन्द्रराव, उठ और मुझे अच्छी प्रकार देख ले। मैं इस समय तेरा काल-

रूप होकर यहाँ आया हूँ। बोल इस समय तेरा वह अहंकार कहाँ है। नीच! महाराज शिवाजी की निन्दा करनेवाला अवश्य ही प्राण दंड पाता है। मैं यदि चाहता तो तुझे सोते में ही मार सकता था परन्तु मैं निशस्त्र शत्रु पर अस्त्र चलाना धर्म-विरुद्ध समझता हूँ। इस लिए बिना बोले चाले उठ और मुझसे युद्ध कर। इस समय तू मेरे हाथ से बच नहीं सकता। बाहर मेरे साथी का पहरा है। जल्दी कर, समय नहीं है।

चन्द्रराव ने देखा कि यदि इस बलिष्ठ मनुष्य से लड़ा तो मृत्यु निश्चय ही है। इस कारण विनीत स्वर से बोला—युवक, मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया है, तो भी यदि तुम मेरी जान न लो तो मैं तुम्हें मालामाल कर दूँगा। मैं महराज शिवाजी की संधि को भी स्वीकार कर लूँगा। मैं भिक्षा माँगता हूँ, मुझे मारो मत।

राघो— मूर्ख! मैं तुझे मारने की प्रतीक्षा कर चुका हूँ। मैं तुझे बिना मारे नहीं छोड़ सकता। यदि तेरे वचन का कुछ विश्वास होता तो कदाचित् इस समय तुझे मैं स्वामी के कार्य के बदले छोड़ भी देता। परन्तु मेरा हृदय तुझ पर विश्वास नहीं करता। इस लिए खड्ग उठा और समय नष्ट न कर।

चन्द्रराव—युवक, मैं शपथ खाता हूँ...

राघो—मैं शपथ खानेवाले को अत्यन्त ही नीच और झूठों का सरदार समझता हूँ। अतएव समय नष्ट न कर। मैं अधिक समय नष्ट नहीं कर सकता।

चन्द्रराव ने जब कोई राह न देखी तो खड्ग उठाई और राघो बोलाळ पर वार किया। राघो ने फुर्ती से वार बचाकर एक ऐसा हाथ मारा कि बेचारे चन्द्रराव का सिर कट-

कर पृथ्वी पर गिर गया। इसी समय बाहर कोलाहल सुनकर लहू की सनी खड्ग लिये राघो बाहर आया तो देखा कि चन्द्रराव का भाई शम्भूजी से गुथा है और उसको कटार मारना चाहता है। इसी समय राघो की खड्ग चल गई और शम्भूजी उठकर खड़े हो गये। इन दोनों ने खड्ग पोंछकर म्यान में रख ली और बाहर भाग गये। ये लोग सीधे दीवार के पास गये और रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ने लगे। इसी समय एक प्रहरी की दृष्टि इन पर पड़ गई। उसने एक तीर खींच कर मारा। तीर राघो की आँख में लगा परन्तु वह दीवार कूद ही गये। सारे राजप्रासाद में गोलमाल मच गया। शम्भूजी राघो बोलाल को सँभाले हुए अपने घोड़े के पास आये। सैनिक वस्त्र उतार कर अपने वस्त्र पहने फिर घोड़ों पर चढ़कर जौली दुर्ग के बाहर हो गये। आज्ञापत्र होने से किसी ने उन्हें रोका नहीं। संध्या होने से कुछ पहले सारे दुर्ग में राजा की हत्या की ख़बर फैल गई। सारे दुर्ग-द्वार बंद कर दिये गये और आने-जानेवालों की कठिन परीक्षा होने लगी। उधर शम्भूजी सीधे न जा सके। राघो बोलाल की आँख में बड़ी पीड़ा होने लगी इस कारण वे सदर राह छोड़कर जंगल में घुस गये। थोड़ी दूर जाने पर पीड़ा इतनी अधिक हो गई कि राघो मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिड़ पड़े। शम्भूजी ने उन्हें अपने कंधे पर लाद लिया और एक ओर जंगल में चले। थोड़ी देर पश्चात् यह एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ पर एक पहाड़ी झरना झर रहा था। इन्होंने राघो बोलाल को एक चट्टान पर लिटा दिया और आप उनकी शुश्रूषा में लग गये।

उधर दुर्ग में चारों ओर हाहाकार मच गया। राजा

और उनके भाई की इस अचानक हत्या ने सारे दुर्ग में हल-चल मचा दी। चारों ओर मनुष्य घातकों की खोज में घूमने लगे। जिस प्रहरी ने उन पर तीर चलाया था उससे उनके मरहठा दूत होने का पता मिल चुका था इस कारण सारा दुर्ग उन दूतों के लिए छान मारा परन्तु उनका कहीं पता न चला। दुर्ग-द्वार पर ज्ञात हुआ कि वे लोग बड़ी देर से दुर्ग के बाहर निकल गये। ऐसे अवसर पर संध्या होने के कुछ पहले एक अश्वारोही बड़े वेग से घोड़ा दौड़ाता दुर्ग के द्वार पर आया। द्वार बंद था। इस कारण उसे घोड़ा रोकना पड़ा। द्वाररक्षक ने पूछा —कौन है ?

अश्वारोही—मैं सूबेदार माधवराव महाराज शिवाजी के पास से एक संदेशा लेकर आया हूँ और महाराज के भेजे हुए दूतों से मिलना चाहता हूँ।

थोड़ी देर तक दुर्ग में सन्नाटा रहा। उसके पश्चात् दुर्ग का फाटक धीरे धीरे थोड़ासा खुल गया। माधव घोड़ा बढ़ाकर अन्दर गये परन्तु अभी यह अन्दर पहुँचे ही थे कि पचास सशस्त्र सैनिकों ने इन्हें घेरकर बेक़ाबू कर दिया। बेचारे आश्चर्य में आ गये और जब इन्हें अपनी अवस्था का ज्ञान हुआ तो उन्होंने अपने आपको बन्दी पाया।

सैनिक लोग चारों ओर चिल्लाने लगे। कोई कहता, इसे रत्ती रत्ती नोचकर मारो, कोई कहता, नहीं इसे उलटा खौलते तेल के कढ़ाओं पर लटका दो। किसी का मत था कि इसे मृत्यु-चक्र की सज़ा दो। माधव खड़े खड़े सबका मुँह देख रहे थे परन्तु उन्हें इस उपद्रव का अर्थ समझ में नहीं आता था। उन्होंने साहस करके एक सरदार से कहा—महाशय, कृपया मुझे राजा चन्द्रराव के पास ले चलिये। मैं

उनसे अपने आने का अभिप्राय कहकर अपनेआपको निर्दोष प्रमाणित कर दूँगा।

वह सरदार इतनी बात सुनकर कुछ मुसकुराया और बोला—थोड़ी देर ठहरो, हम सब आप ही तुमको राजा चन्द्रराव के पास भेजने का प्रबन्ध कर रहे हैं।

माधव—क्या राजा साहब दुर्ग में नहीं हैं?

सरदार हँस दिया और एक ओर चला गया। सब लोग माधव को ढकेलते हुए बस्ती की ओर ले चले। माधव चकित थे। कुछ इनको समझ में नहीं आता था कि इस बर्ताव का क्या अर्थ है, वे नगर की ओर चले जा रहे थे। सैनिकगण उनसे अशिष्ट व्यवहार तक करने में भी न चूकते थे। वे कुछ सोच ही रहे थे कि उनकी दृष्टि एक सरदार पर पड़ी जो उनके दाहने हाथ पर जा रहा था। उसकी मुखाकृति से दया टपकती थी। इन्होंने एक बार फिर साहस करके उसे सम्बोधित किया। उसने शून्य दृष्टि से उनकी ओर देखा, परन्तु उन नेत्रों में कुछ दया की मात्रा भी थी। माधव कहने लगे—महाशय, आप लोगों के इस बर्ताव का अर्थ मेरी समझ में नहीं आता। क्या आप सब आनेवालों से ऐसा ही बर्ताव करते हैं। हमारी आपसे कोई शत्रुता तो है नहीं फिर यह सब क्यों? कृपया मेरी शंका मिटा दीजिये!

सरदार इनकी ओर देखकर मुसकुराया फिर बोला—माधवराव, जान पड़ता है कि तुम शिवाजी के पास से अपने दूतों के पहुँचने के पहले ही चले आये हो अन्यथा तुम ऐसे निर्भीक भाव से हम लोगों में न चले आते।

माधव—जान पड़ता है कि दोनों दूत अपना काम पूरा

न कर सके और लौट गये। परन्तु मुझे वे राह में नहीं मिले। ज़ौली के राज्य ने हमारी सन्धि अस्वीकार की। कोई चिन्ता नहीं है, मुझे आप महाराज के सामने ले चलिये। मैं उनके पास संधि करने को ही भेजा गया था। जो काम उन दूतों से न हुआ वह मैं करूँगा। मेरी बात को महाराज चन्द्रराव अवश्य ही मानेंगे।

सरदार—माधवराव, तुम बड़े भ्रम में पड़े हुए हो, महाराज चन्द्रराव अब इस संसार में नहीं हैं। तुम्हारे दूत अपना कार्य न कर सके हों, यह सही है, परन्तु वे महाराज और उनके भाई की हत्या अवश्य कर गये। अब तो सब तुम्हारी समझ में आ गया होगा। अब हम लोग तुम्हें विचारार्थ राज सभा में ले जायँगे और जैसा महाराज का आदेश होगा करेंगे।

अब सारी बातें माधव की समझ में आ गईं। वह अपने जीवन से निराश हो गये। महाराज चन्द्रराव की मृत्यु का बदला उससे अवश्यही लिया जायगा। हा! क्या इसी प्रकार जीवन समाप्त होना प्रारब्ध में लिखा था? सैनिक माधव को सभाभवन की ओर ले चले। राजप्रासाद पर पहुँचकर सब लोग रुक गये। सरदार ने प्रहरी से अपने आने की ख़बर कराई। प्रहरी भीतर चला गया। माधव सोच में पड़े हुए थे कि अब क्या होता है। इसी समय प्रहरी आया और सरदार को बुलाकर राजभवन में चला गया। थोड़ी देर पश्चात् सरदार ने बाहर आकर कहा—माधव, हमने तुम्हारा वृत्तान्त महाराज को सुना दिया है। उसपर विचार किया जायगा तब तक के लिए तुम्हें बंदीगृह में रखने की आज्ञा हुई है।

यह कहकर सरदार ने एक सैनिक की ओर देखा। वह

तुरन्त ही वहाँ से चला गया और थोड़ी देर में ही दो बलिष्ठ काय, श्याम-वर्ण, डरावनी सूरत के व्यक्तियों को लेकर लौट आया। उन दोनों यमदूतों ने आते ही माधव को दोनों ओर से घेर लिया और ढकेलते हुए एक ओर ले चले। सरदार ने पीछे से कहा—'रौरव'। यह सुनकर दोनों भूत एक बार काँप उठे परन्तु फिर उसी प्रकार स्थिर होकर चल दिये। माधव को ढकेलते हुए ये लोग एक बुर्ज के पास पहुँचे। बुर्ज के बाहर दो प्रहरी मूर्त्तिवत खड़े थे। यमदूतों ने बुर्ज का द्वार खोला और माधव को ढकेलकर अन्दर ले गये। माधव ने पीछे घूमकर मूर्तिवत् सैनिकों की ओर देखा, उनमें से एक को यह पहचानते थे। वह वही मुखिया था जिसके बच्चों को इन्होंने अग्नि से बचाया था। उसने भी इन्हें पहचान लिया था, क्योंकि वह बहुत ही घबड़ायासा जान पड़ता था। इसी समय एक यमदूत ने माधव को आगे को ढकेल दिया और द्वार अन्दर से बन्द कर दिया। अब एक यमदूत आगे और एक इनके पीछे हो गया। माधव एक सीढ़ी पर चढ़ने लगे। जब ऊपर पहुँच गये तब फिर उतरने की बारी आई। उसी समय बदबू के कारण माधव का मस्तिष्क घूमने लगा। वे पुतली की भाँति आगे को बढ़ने लगे। नीचे उतरकर माधव ने देखा कि वे एक पतलीसी गली में चले जा रहे हैं जिसके दोनों ओर लोहे के सीख़चे लगी हुई दृढ़ कोठरियाँ बनी हुई हैं। बहुत सी ख़ाली पड़ी थीं परन्तु बहुतों में सीखचों को पकड़े मनुष्य खड़े हुए थे जो अपनी आकृति से इस संसार के मनुष्य नहीं ज्ञात होते थे। सुरंग में सीलन इतनी थी कि माधव को ज्ञात होता था कि पानी में जा रहे हैं—किसी किसी कोठरी के सीख़चों में माधव ने केवल हड्डी की ठठरी

हीं खड़ी देखा। माधव का दिल बैठ गया। भगवान् इस जीवित नरक से मृत्यु दे देता तो अच्छा था। इसी समय माधव के दोनों प्रहरी रुक गये और माधव को एक खुली कोठरी में ढकेलकर बाहर से द्वार बन्दकर ताला लगा दिया। इनके पहुँचने से चमगादड़ों की शांति भंग हो गई और वे इधर-उधर मंडलाकर अपनी असम्मति प्रकट करने लगीं। यमदूत माधव को बन्द करके लौट गये। माधव ने और और बन्दियों को उन्हें भाँति भाँति की गाली देते सुना परन्तु वे दोनों कलों की भाँति चुपचाप अपना कार्य करके चले गये। माधव ने अपने चारों ओर दृष्टि डाली! उस स्थान पर दिन और रात समान थी, कुछ भी दिखाई नहीं देता था। यह उस कोठरी की लम्बाई और चौड़ाई देखने चले। काम भी शीघ्र ही समाप्त हो गया। यह कोठरी अत्यन्त ही संकीर्ण थी। इतनी नीची कि इनका सिर छत में छूता था। एक ओर पुआल पड़ा था। एक कोने में मिट्टी का एक घड़ा पानी पीने को भरा धरा था। कोठरी इतनी छोटी थी कि यह भली प्रकार पैर फैलाकर लेट नहीं सकते थे। माधव व्याकुल हो उठे। क्या इस गंदी अन्धेरी जगह में ही भूखे प्यासे जान गँवानी पड़ेगी! हाय, क्या यही दिन देखने के लिए मैं अभी तक जीता था। माधव को क्रोध चढ़ आया। वे उठ खड़े हुए और ज़ोर करके द्वार तोड़ने का उद्योग करने लगे। बड़ी देर तक ज़ोर करते रहे परन्तु द्वार अत्यन्त ही दृढ़ बना था। इनका परिश्रम व्यर्थ हो गया। अन्त को थककर यह उस पुआल पर पड़ गये। इन्हें ज्ञात हुआ जैसे कोई वस्तु इनके नीचे रेंग रही हो। यह तुरन्त ही चौंककर उठ बैठे परन्तु अँधेरा होने के कारण

यह निश्चय नहीं कर सके कि क्या है। बड़ी देर तक शंकित चित्त से जागते रहे। अन्त को नींद ने इतना ज़ोर दिखाया कि यह सो गये।

विंशति परिच्छेद

माधव को इस अँधेरी कोठरी में पड़े पड़े आज कई दिन हो गये। रोज़ संध्या समय दोनों यमदूत आते और घड़ा पानी से भर और कुछ भुने चने पास रख चले जाते। माधव ने उनसे बोलने का बहुत प्रयत्न किया, उनसे भाँति भाँति के प्रश्न किये, प्रलोभन दिया, परन्तु सब व्यर्थ। मानो वे रक्त-मांस के बने ही नहीं थे। अनुमान से माधव को उस अँधेरे में पड़े पड़े एक सप्ताह व्यतीत हो गय। माधव ने अपने जीवन की आशा छोड़ दी। न-जाने इस समय संसार क्या कर रहा है? माधव का संसार तो इस कोठरी के अतिरिक्त कुछ भी न रह गया था। माधव अपने विचारों में निमग्न थे। वे सोच रहे थे—क्या यही जीवन वीरजीवन कहलाता है? भगवान् और कब तक इस प्रकार प्रायश्चित् कराओगे? इससे तो मृत्यु ही मिल जाती तो अच्छा था। (इसी समय उन्हें शान्ता का ध्यान हो आया। उन्होंने उड़ती ख़बर सुनी थी कि ज़ौली के राजा चन्द्रराव ने शान्ता को अपनी पुत्र वधू बनाने के लिए माँगा था।) यह बहुत दिनों की बात है। अवश्य ही अब तक विवाह हो गया होगा। तो क्या इस

समय शान्ता, मेरे बचपन की संगिनी शान्ता, मेरे हृदय की देवी शान्ता, इस समय, इसी दुर्ग में अंतःपुर में विलास-भोग कर रही है और मैं ? हाय, इस नरक में कष्ट भोग रहा हूँ। यदि शान्ता यहाँ है तो क्या उसे मेरे बन्दी होने का समाचार नहीं मिला होगा ? अवश्य ही मिला होगा। तो क्या वह मेरे उद्धार का प्रयत्न न करेगी ? यदि वह चाहे तो मेरा उद्धार करवा सकती है। परन्तु, उसने कहाँ चाहा। आज यहाँ पड़े मुझे एक सप्ताह बीत गया। किसी ने मुझे सान्त्वना वाक्य भी तो नहीं कहा, क्या जाने वह मेरा पहले की भाँति ही ख्याल करती है या नहीं। कौन जाने राजा-रानी होने से मुझे भूल गई हो। हाय, यदि मैंने अपना राज्य न खोया होता तो आज वह मेरी होती और मुझे यह दिन न देखना पड़ता। हाँ, खूब याद आया; शान्ता ने मुझसे अन्तिम मिलन में कहा था कि वह मेरे लिए ही ब्रह्मचर्य पालन करेगी। क्या वह अपने वचन पर दृढ़ बनी होगी। क्या वह अपने पिता की आज्ञा टाल देगी ? तुकोजी अत्यन्त ही क्रोधी हैं। क्या वे अपनी बात टलने देंगे। सम्भव है कि बलपूर्वक उसका विवाह करना चाहे हों। क्या शान्ता अपनी प्रतिज्ञा भंग कर देगी ? नहीं, प्रतिज्ञा भंग करने से प्रथम ही वह आत्महत्या ....।

माधव चौंक पड़े, उन्हें निश्चयसा होने लगा कि शान्ता अब इस संसार में नहीं है। उनके हृदय में सहस्रों बिच्छुओं के एक साथ डंक मारने के समान पीड़ा होने लगी। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि यदि इस बार प्राण बच गये तो मैं शान्ता की खोज करूँगा और यदि उसने आत्महत्या करली होगी तो तुकोजी से उसकी मृत्यु का परिशोध लूँगा। इसके बाद उनका ध्यान

दूसरी ओर चला गया। वे सोचने लगे कि माताजी मेरे बंदी होनेका अथवा मृत्यु का संवाद पाकर क्या कहेंगी। उनके हृदय में अभी स्वर्गीय आबाजी का शोक ताज़ा है। अब मेरा समाचार पाकर न-जाने उनका क्या हाल होगा। फिर उनका ध्यान उस गाँव के मुखिया की ओर चला गया। वे सोचने लगे, मुझे अच्छी प्रकार देखने का अवकाश नहीं मिला, तथापि मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि वह विनायकराव ही था। माधव की निराशारूपी अँधियारी में एक आशा की मन्द ज्योति जल उठी। विनायकराव अवश्य ही मुझे बंधनमुक्त करने का प्रयत्न करेगा। क्या वह मुझे इस नरक से निकलाने में कृत-कार्य होगा ?

माधव यह सोचही रहे थे कि उन्हें सुरंग में पैरों की चाप सुनाई दी। इस समय बाहर अवश्य ही रात्रि होगी, क्योंकि सब बंदी निद्रादेवी की गोद में पड़े अपने घरों का स्वप्न देख रहे थे। इस समय कौन इस स्थान पर आ रहा है। माधव का हृदय आशा और निराशा के झोंके खाकर बड़े वेग से धड़कने लगा। धीरे धीरे शब्द निकट आ गया और माधव के द्वार के सामने आकर रुक गया। माधव ने देखा कि एक मनुष्य भली प्रकार से अपने शरीर को छिपाये उनके द्वार पर खड़ा है। माधव का हृदय शंका से हिल गया। क्या यह मुझे मारने तो नहीं आया है। कदाचित् मुझे मृत्युदण्ड की आज्ञा मिल गई हो और यह व्यक्ति रात्रि के अंधकार में मुझे इस संसार से बिदा करने आया हो। सहसा माधव की दृष्टि में संसार अत्यन्त ही सुन्दर प्रतीत होने लगा। इसी समय उनके कानों में ताली घूमने का शब्द आया। माधव ईश्वर का स्मरण करने लगे। फिर धीरे से द्वार खुल

गया और उस व्यक्ति ने धीरे से कहा—समय कम है, शीघ्र ही निकल आइये।

माधव का हृदय प्रसन्नता से नाचने लगा। उन्होंने आज एक सप्ताह बाद मनुष्य का शब्द सुना। यह शब्द कभी पहले भी सुन चुके हैं। हाँ, ठीक याद आ गया, यह विनायक-राव का कंठ-स्वर है। माधव शीघ्रता से उस कोठरी के बाहर निकल आये और दोनों व्यक्ति शीघ्रता से परन्तु बड़ी साव-धानी से बाहर की ओर चले। बन्धन-मुक्त होने की प्रसन्नता में माधव ईश्वर का धन्यवाद देना भी भूल गये। वे सोचने लगे कि बाहर निकलकर यह करूँगा वह करूँगा, इत्यादि। इसी प्रकार सोचते सोचते कुछ ही दूर गये थे कि वज्रपात हुआ। उस अँधेरे में से चार मूर्त्तियाँ निकल आईं और उन्होंने इन दोनों को पकड़ लिया। विनायकराव के मुख से एक चीख निकल गई। मूर्त्तियाँ माधव को ठेलकर फिर पीछे की ओर को चलीं और जाकर फिर उसी कोठरी में बन्द कर दिया। माधव ने देखा कि दूसरी मूर्त्तियाँ विनायकराव को लेकर बाहर चली गईं। विनायकराव के लिए उनका दिल भर आया। वह सोच में बैठ गये। थोड़ी देर पश्चात् और बंदी उठ बैठे। माधव अभी उसी प्रकार बैठे सोच रहे थे कि उनके हृदय का आशारूपी दीपक एकाएक वायु का झोंका लगने से बुझ गया। वह जीवन से निराश होकर बैठ गये, पिछले दिनों के चने वैसे ही पड़े थे माधव ने उन्हें छूआ तक नहीं था। इसी समय उन्हें सुरंग में पैरों की चाप सुनाई दी। माधव चौंक पड़े। दो यमदूत आकर उनके द्वार पर खड़े हो गये और उन्हें निकालकर बाहर की ओर ले चले। उस अन्ध-कार से मुक्त होने पर माधव ने ईश्वर को अनेकानेक धन्य-

वाद दिया। माधव की आँखें अँधेरे में रहने से ऐसी हो गई थीं कि बाहर निकलने पर चौंधिया गईं। यमदूत इन्हें एक ओर ले चले। माधव चारों ओर विस्फारित नेत्रों से देखते चले। धीरे धीरे यह एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ नगर के बहुतसे व्यक्ति एकत्रित थे। माधव के पहुँचते ही कोलाहल कम हो गया। सब लोग उत्सुकता से एक ओर देखने लगे। माधव ने भी उस ओर दृष्टि उठाकर देखा। एक ऊँचे स्थान पर एक जड़ाऊ सिंहासन रक्खा है उस पर राजा हरदेवराय विराजमान हैं, इधर-उधर उनके और सामन्तगण बैठे हैं। माधव के प्रहरियों ने झुककर उन्हें प्रणाम किया। राजा साहब ने हाथ उठा दिया। सारी भीड़ में सन्नाटा छा गया। माधव कारण जानने के लिए व्याकुल हो गये। उसी समय उनके प्रहरियों ने उन्हें बीच में लाकर खड़ा कर दिया। माधव ने देखा कि एक चबूतरा बना हुआ है जिस पर एक मनुष्य बड़ी कठिनाई से लेट सकता है। उस चबूतरे पर चार पहिये लगे हुए हैं और हर पहियों में एक एक तेज चाकू निकला हुआ है। माधव विचार में पड़ गये। थोड़ी देर पश्चात् जो उन्होंने दृष्टि उठाकर देखा तो अपने पास ही विनायकराव को प्रहरियों से घिरा खड़ा पाया। इसी समय शंख-ध्वनि हुई। प्रहरी विनायकराव को लेकर उस चबूतरे के पास गये और उसे पकड़कर चबूतरे पर सीधा बाँध दिया। माधव के हृदय की धड़कन बन्द होने लगी। चारों पहिये घूमने लगे, साथ ही बेचारे विनायकराव की चीख़ों से सारा मैदान गूँजने लगा, पहिये बहुत धीरे धीरे घूम रहे थे। इस कारण चाकू देर देर में उसके शरीर के निकट आते थे और घाव करके चले जाते थे। माधव ने और भी देखा कि पहिये धीरे

धीरे पृथ्वी में बैठे जा रहे हैं और उनकी गति धीरे धीरे तेज़ होती जा रही है। धीरे धीरे विनायकराव की चीखें कम हो गईं और अन्त में थम गईं। इस समय पहिये बड़े वेग से घूम रहे थे। बेचारे विनायकराव का शरीर माधव के देखते देखते चार भागों में विभाजित हो गया। उसी समय पहिये थम गये। दो भूतसी सूरतों के व्यक्ति आगे बढ़ गये और उन्होंने शव को वहाँ से उठाकर अलग कर दिया। साथ ही फिर शंख-ध्वनि हुई। माधव के प्रहरी माधव को ढकेलते हुए आगे ले चले। माधव ने जीवन की आशा छोड़ दी और भरे हुए हृदय से ईश्वर की वन्दना करते हुए आगे चले। प्रहरियों ने उन्हें चबूतरे पर बाँध दिया। पहिये घूमने लगे और माधव को इस संसार-क्षेत्र से ढकेलने का प्रयत्न करने लगे।

एकविंशति परिच्छेद

माधव के चले जाने के दो दिन पश्चात् महाराज शिवाजी भी दल-बलसहित जौली की ओर चल दिये। नवयुवक सैनिक शान्तवीरसिंह भी साथ था। महाराज शिवाजीको उसने इन दो-तीन दिनों में ही ऐसा अपने वश में कर लिया कि वे उसे अपने पुत्र की भाँति प्यार करने लगे। शान्तवीरसिंह महा-राज के पार्श्वचर के रूप में साथ थे। कई दिन चलकर इन्होंने एक जंगल में डेरा डाला। जासूस चारों ओर खोज लेने के लिए भेज दिये गये। महाराज शिवाजी ने रात्रि के समय कुछ विश्राम करने का प्रयत्न किया, परन्तु कुछ देर

सोये होंगे कि कोलाहल के कारण उनकी निद्रा भंग हो गई। वे उठ बैठे और पुकारा—प्रहरी !!!

उसी समय शान्तवीर सिंह ने शिविर में प्रवेश करके कहा—महाराज, आज्ञा।

शिवाजी—जाओ, देखो, कैसा कोलाहल हो रहा है?

शान्तवीरसिंह—जो आज्ञा।

शान्तवीरसिंह के जाते ही महाराज शिवाजी खड्ग उठाकर इधर-उधर टहलने लगे। थोड़ी देर पश्चात् शान्तवीरसिंह लौट आये और हाथ जोड़कर बोले—महाराज!

शिवाजी ने ऊपर दृष्टि उठाकर देखा, मानो प्रश्न किया—क्या है?

शान्तवीरसिंह—महाराज, दो राजदूत लौट आये हैं और उनके साथ राघो बोलाल और शम्भूजी काऊजी भी हैं। राघो बोलाल का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, झौली में एक तीर आँख में लगने से उनकी आँख में कठिन पीड़ा है। सैनिकगण उन्हें घेरकर भाँति भाँति के प्रश्न कर रहे हैं, इसी कारण कोलाहल हो रहा है। वे महाराज के पास ही आ रहे हैं।

यह कहकर शान्तवीरसिंह प्रणाम करके बाहर चले गये और महाराज शिवाजी उसी प्रकार टहलते रहे। थोड़ी देर पश्चात् राघो बोलाल और शम्भूजी शिविर-द्वार पर आ गये। महाराज ने उन्हें तुरन्त बुला लिया। उन दोनों ने आकर महाराज को दण्डवत की और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। महाराज शिवाजीने उनकी ओर देखा और कहने लगे—शम्भूजी, तुमसे हमें ऐसी आशा नहीं थी। हम समझते थे कि तुम लोग कार्य पूरा करके आओगे। तुम्हारे बाद ही हमने सूबेदार माधवराव को भेजा है, वह इस

समय तक कभी के दुर्ग में होंगे। मैं सोचता हूँ कि जिस कार्य को तुम पूरा नहीं कर सके, उसे वह अवश्य ही पूरा कर दिखायेंगे।

राघो और शम्भूजी महाराज शिवाजी के वचन सुनकर घबड़ा गये परन्तु कुछ बोले नहीं। उन दोनों को चुप देखकर महाराज फिर कहने लगे—क्यों, तुम लोग चुप क्यों हो, बोलते क्यों नहीं ? मुझे तुम्हारी सूरत देखकर पता चलता है कि तुम वहाँ कोई बड़ा भयानक कार्य कर आये हो और तुम्हारे बाद माधव का पहुँचना आपत्ति से खाली नहीं है। शीघ्र ही यहाँ से जाने के पश्चात् का सब हाल हमें सुनाओ।

राघो बोलाल ने डरते डरते दबी ज़बान से सब हाल महाराज शिवाजी को सुनाये फिर बोले—महाराज, उस नीच दम्भी के लिए जिसने महाराज को कटुवाक्य कहे यही उचित दण्ड था।

शिवाजी—मूर्ख छोकरो, तुम्हें मैं क्या दोष दूँ; तुमने नासमझी से शीघ्रता करके सब कार्य होने की सम्भावना मिटा दी। इस समय युद्ध अनिवार्य हो गया। बहादुर माधवराव अवश्य ही बन्दी कर लिया गया होगा। कौन जाने, उसके साथ क्या सलूक किया गया हो ? कौन कह सकता है कि इस समय भी उससे चन्द्रराव की हत्या का बदला निकाला जा रहा हो ? अच्छा, जाओ विश्राम करो। शान्तवीरसिंह !

शान्तवीरसिंह—महाराज, आज्ञा।

शिवाजी—जाओ, सेना में से एक हज़ार वीरों को शीघ्र तैयार होने की आज्ञा दो। हम इसी समय ज़ौली-दुर्ग पर धावा करेंगे। शीघ्रता करो, समय कम है और कार्य कठिन।

शान्तवीरसिंह से महाराज को अपनी आज्ञा दुहराने की

आवश्यकता न हुई । उसने डेरे के अंदर कही हुई सब बातें सुन ली थीं और वह महाराज शिवाजी से माधव की सहायता को जाने के लिए अधिक उतावला हो रहा था। वह महाराज की आज्ञा लेकर वायुवेग से भागा और थोड़ी देर में महाराज शिवाजी अपनी छटी हुई सेना के साथ ज़ौली की ओर चल दिये।

दो दिन लगातार चलने के पश्चात् इस सेना को ज़ौली-दुर्ग दिखाई देने लगा; परन्तु अभी वह इतनी दूर था कि ये लोग अनुमान से डेढ़ दिन में वहाँ पहुँच सकते थे। चारों ओर जासूस छोड़ दिये गये परन्तु इस सेना ने अपनी चाल धीमी नहीं की, बराबर चली ही गई। एक दिन और रात लगातार चलकर ये दुर्ग के अत्यन्त निकट पहुँच गये। दिन चढ़ गया था, परन्तु महाराज की आज्ञा से उसी समय दुर्ग पर धावा बोल दिया गया। ज़ौली के प्रहरी लोगों ने भी इन्हें देख लिया और दुर्ग पर से तोपें धायँ धायँ कर उठीं। यह वही समय था जब कि माधव को चबूतरे पर बाँध-कर पहिये चला दिये गये थे। तोपों का शब्द सुनकर सब लोग दीवारों की ओर भागे। बेचारे माधव की किसी ने सुध भी न ली। पहिये घूमते रहे। माधव घावों के कारण मूर्च्छित हो गये थे।

उधर दुर्ग की सेना जी तोड़कर युद्ध कर रही थी। हिम्मतराय अपनी सेना का उत्साह बढ़ा रहे थे। बड़े घमा-सान का युद्ध हो रहा था। दोनों ओर लोथों पर लोथें गिर रही थीं। इसी घोर युद्ध में हिम्मतराय ने देखा कि महाराज शिवाजी एक ओर अपनी सेना को उत्साहित कर रहे हैं। उनका ध्यान बटा देखकर उसने लक्ष्य बाँधा। तीर उसकी

कमान से छूटना ही चाहता था और महाराज शिवाजी के प्राण संकट में थे। इसी समय शान्तवीरसिंह की दृष्टि उस ओर जा पड़ी, बस फिर क्या था, एक तीर सनसनाता हुआ चल दिया और उसने हिम्मतराय को सदा के लिए इस संसार से विदा कर दिया। उसका तीर छूटने भी न पाया। महाराज शिवाजी को उसी क्षण इस अवस्था का ज्ञान हो गया। उन्होंने आगे बढ़कर शान्तवीरसिंह को गले लगा लेना चाहा, परन्तु वह पीछे हट गया और महाराज के चरणों पर सिर रख दिया। महाराज ने प्रसन्न होकर कहा—शान्त-वीरसिंह, हम तुमसे अत्यन्त ही प्रसन्न हैं। माँगो, क्या पुरस्कार माँगते हो?

शान्तवीरसिंह—महाराज के अनुग्रह से मुझे किसी बात की आवश्यकता इस समय नहीं है। महाराज, अपना वरदान धरोहर की भाँति रख छोड़ें, जब मुझे आवश्यकता होगी मैं माँग लूँगा।

लड़ाई पूर्ववत् ही हो रही थी। हिम्मतराय की मृत्यु की हलचल में किसी ने ध्यान नहीं दिया और एक मरहठा सिपाही कूदकर दीवार पर चढ़ गया और उसने चुपके से दुर्ग-द्वार खोल दिया। फिर क्या था, "हरहर महादेव" कहती हुई शिवाजी की सेना दुर्ग में प्रवेश करने लगी। द्वार पर फिर बड़ा विकट संग्राम होने लगा; परन्तु कुछ देर पश्चात् दोनों राजकुमार बंदी हो गये। सेना ने अस्त्र डाल दिये। शान्तवीरसिंह तुरन्त ही कुछ सैनिक लेकर माधव की खोज में चला। उसे अधिक दूर खोजने नहीं जाना पड़ा। नगर के बीच में ही माधव पूर्व-कथित अवस्था में पड़े थे। पहिये घूम रहे थे, माधव के शब्द में तनिक भी जान नहीं ज्ञात होती

थी। सैनिकों ने ज़ोर करके पहियों को रोक लिया और उखाड़कर फेंक दिया। माधव का शरीर चार भागों में कटा हुआ था। शान्तवीरसिंह उसे इस अवस्था में देखकर धैर्य छोड़कर उससे चिमट गये और रोने लगे।

पाठक, आप अब तक पहचान ही गये होंगे कि शान्ता और शान्तवीरसिंह एक ही व्यक्ति हैं। परन्तु जब शान्ता ने माधव के शरीर में तनिक भी जान न देखी तो उसके शोक का पारावार न रहा। उसके केश बिखर गये। वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये। सैनिकों ने देखा कि एक स्त्री माधव के शव पर रुदन कर रही है। महाराज शिवाजी को जो यह समाचार ज्ञात हुआ तो वह तुरन्त ही चले आये। उन्हें भी शान्तवीरसिंह के रूप में शान्ता को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगे कि क्या यह सम्भव है कि यह स्त्री जो इस समय इस प्रकार फूट फूटकर रो रही है वास्तव में वही शान्तवीरसिंह है जो थोड़ी देर पहले साक्षात् षडानन की भाँति युद्ध कर रहा था। माधव की ऐसी गति देखकर शिवाजी के भी हृदय को बड़ा शोक हुआ! वे आगे बढ़ आये और शान्ता को शव पर से उठाकर पूछने लगे—बेटी तू कौन है? तेरा इस प्रकार वेष बदलकर सेना में सम्मिलित होने में क्या अभिप्राय था? माधव और तुममें क्या सम्बन्ध है?

शान्ता—महाराज, क्या कहूँ, हाय देर से पहुँची। क्या कहूँ महाराज! नहीं अब कुछ नहीं कहूँगी। परन्तु छिपाने से भी अब क्या लाभ? महाराज मेरा नाम शान्ता है। मैं वीर तुकोजी की एकमात्र पुत्री हूँ, सब साक्षी रहें? मैं जो कुछ कहती हूँ उसके सब साक्षी रहें।

यह कहकर शान्ता ने अपना सब वृत्तान्त आद्योपान्त

शिवाजी को सुना दिया। महाराज शिवाजी के नेत्रों से भी आँसू टपक पड़े। शान्ता फिर कहने लगी—महाराज, मैंने सोचा था कि इस प्रकार मैं प्राणेश्वर के किसी काम आ सकूँगी, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। महाराज, आपसे अब मेरी यही प्रार्थना है कि महाराज ने जो पुरस्कार मुझे देने को कहा था वह अब देने की कृपा करें।

शिवाजी—बेटी, बोल; मैं तेरे लिए क्या करूँ।

शान्ता—और कुछ नहीं महाराज, केवल इतना ही कि आप मेरा विवाह इस शव के साथ करा दें, जिससे मैं भी स्वर्ग की अधिकारिणी हो सकूँ और महाराज मुझे सती होने से न रोकें फिर मैं सुख से प्राणेश्वर के साथ सती हो जाऊँगी।

शिवाजी—बेटी, मैं वचनबद्ध हूँ इस कारण सती होने को तो तुझे कैसे मना करूँ परन्तु तूने अभी इस संसार में देखा ही क्या है?

शान्ता—महाराज, मैंने जो कुछ देखा वह ईश्वर किसी शत्रु को भी न दिखावे। महाराज, मुझे अब जीने की लालसा नहीं रही। हाँ, मैंने कहा था, प्राणनाथ यदि तुम युद्ध में, देश-सेवा में प्राण त्याग देते तो तुम्हारी शव को आत्मा समर्पण कर देती। हाय, मेरी वाणी सत्य हो गई। प्राणेश, मैं तुम्हें आत्मा समर्पण करती हूँ। हाय, मैंने तुम्हें नहीं पहचाना! दासी का अपराध क्षमा करो और मुझे दासीरूप में श्रीचरणों में स्वीकार करो!

इसी समय महाराज शिवाजी के बुलाये हुए एक पंडित महाशय वहाँ आ उपस्थित हुए। पंडितजी वैद्यक-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे, कुछ कर्मकाण्ड भी जानते थे। उन्होंने विवाह की रस्म कराने के लिए माधव और शान्ता का हाथ

मिलाया तो माधव का हाथ लेने में उनका हाथ उनकी नाड़ी पर पड़ा। उनका मुख खिल गया। वह महाराज शिवाजी की ओर देखकर कहने लगे—महाराज, ईश्वर का धन्यवाद है कि मुझे एक कन्या का शव के साथ विवाह कराने का पाप नहीं लगा। इस शरीर में अभी जीवन शेष है। यदि यत्न किया जाय तो आशा है अब भी बच जाय।

इस शुभ समाचार को सुनते ही शान्ता हर्ष के कारण मूर्च्छित हो गई। माधव का शरीर उसी क्षण उठाकर एक सुन्दर स्थान पर लाया गया। उसी समय तुकोजी और वृद्धा माता के पास भी समाचार भेज दिया गया। दोनों दूतों के साथ ही चले आये। तुकोजी ने अपनी कन्या को गले लगा लिया और बोले—बेटी, मैं तुझसे अत्यन्त ही प्रसन्न हूँ। तूने दोनों कुलों की मर्यादा स्थापित की, माधव की कीर्त्ति भारत के इतिहास में सुवर्ण अक्षरों से लिखी हुई है, तेरी भविष्यद्वाणी आज सत्य हुई। आज वीर माधवराव का स्थान मेरे हृदय में सर्वोच्च है।

द्वाविंशति परिच्छेद

दिन पर दिन व्यतीत होने लगे। महाराज शिवाजी का विजयोत्सव सब स्थानों पर बड़े समारोह के साथ मनाया जा रहा था। सैनिकगण अपने अपने कुटुम्बी जनों से मिलने चल दिये। आज से महाराज शिवाजी का कोई भी घरेलू शत्रु नहीं रह गया। चारों ओर विजय की शहनाइयाँ

बजने लगीं। घर घर तोरण और वन्दनवार बाँधे गये। परन्तु सूबेदार माधवराव को इस सब उत्सव की कुछ भी खबर न थी। इस सारी चहल-पहल, सारे उत्सव, सारी धूमधाम में वह एक श्वेत पत्थर की मूर्त्ति की भाँति अपनी शय्या पर पड़े थे। अन्त को धीरे धीरे उस मूर्त्ति का ध्यान भंग हुआ। उसके मस्तिष्क में वैद्यों, कविराजों, इत्यादि की सूरतें चक्कर लगाने लगीं। उन्हीं सूरतों में उसे शान्ता की सूरत भी दिखाई दी। भाँति भाँति की ओषधियाँ होती रहीं। परन्तु एक मृतप्राय शरीर में जान डाल देना कोई हँसी-खेल नहीं है। परन्तु फिर भी प्रयत्न निष्फल नहीं जाता। शान्ता और बूढ़ी माता की ईश्वर के प्रति प्रार्थनायें और वैद्यों की अमोघ ओषधियाँ अन्त को अपना रंग लाईं। और एक दिन उस मूर्त्ति ने आँख खोली और फिर इस संसार में भाग लेने की ठहराई।

वसंतऋतु का सुहावना समय था। तमाम वृक्ष फूल रहे थे और उनकी सुगंधि से सुगंधित पवन चारों ओर अपनी महक फैलाता फिर रहा था। आम पर बौर आया हुआ था। कोयल बार बार अपनी 'पी कहाँ पी कहाँ' की मीठी आवाज़ कर रही थी, संध्यासमय था। बूढ़ी माधव की शय्या के पास बैठी योगवाशिष्ठ पढ़ रही थीं। इसी समय माधव ने आँख खोली। सन्ध्याकाल के डूबते हुए सूर्य की अन्तिम किरणें एक खुली खिड़की से होकर उस कमरे में आ रही थीं जिनसे कमरे की समस्त वस्तुयें स्वर्ण-वर्ण प्रतीत होती थीं। सारा कमरा वसंतऋतु के सुगंधित पुष्पों की सुगंधि से बसा हुआ था। नीचे बाग़ में कुछ स्त्रियाँ बड़े मधुर स्वर से वीणा बजा-कर गान कर रही थीं। माधव ने आँखें बंद कर लीं, उन्हें

माधव—शान्ता ! हैं, तुम यहाँ कैसे आगईं। आओ, मेरे निकट आ जाओ।

शान्ता माधव के पास चली आई। माधव ने उसके दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये। वह सोचने लगे—"क्या शान्ता ने मुझे क्षमा कर दिया। क्या अंत को इसी जीवन में मुझे इतना सुख देखना भी बदा है। विश्वास नहीं होता कि मैं इतना भाग्यशाली हूँ। हे ईश्वर ! कहीं यह सब मेरा सुख-स्वप्न ही न हो और यदि हो भी तो भगवन्, मैं इस स्वप्न से कभी न जागूँ।" उसी समय शान्ता के शब्दों ने उनका ध्यान भंग कर दिया। शान्ता कह रही थी—माधव, यह मत सोचना कि मैं प्रतिज्ञा तोड़ रही हूँ। नहीं इस समय मैं एक विवाहिता स्त्री हूँ।

माधव का हृदय बैठ गया उसके हाथों से शान्ता के दोनों हाथ छूट गये। माताजी के वाक्य कि यह ज़ौली-दुर्ग का अन्तःपुर का एक भाग है उनके मस्तिष्क में घूमने लगे। वे सोचने लगे कि क्या वास्तव में शान्ता ज़ौली में ही विवाही गई थी ! शान्ता उनकी दशा देखकर मुसकुराई परन्तु कहती गई—हाँ, इस समय मैं एक विवाहिता स्त्री हूँ। मेरे मुख में कायर माधव के लिए एक शब्द भी नहीं है; परन्तु इस समय मैं अपने प्राणेश वीर-शिरोमणि सूबेदार माधवराव से बातें कर रही हूँ।

माधव ने हर्ष से एक चीत्कार किया और शान्ता को खींचकर अपने हृदय से लगा लिया। प्रेम-पथिक प्रेम मंदिर में पहुँच गये।